ISSN 2815-8326
9 772815 832008

हिंदी त्रैमासिक

पहचान

देश से हम, हमसे देश

वर्ष: 4, अंक: 4, अप्रैल- जून 2026, पृष्ठ संख्या: 32
प्रधान संपादक : प्रीता व्यास

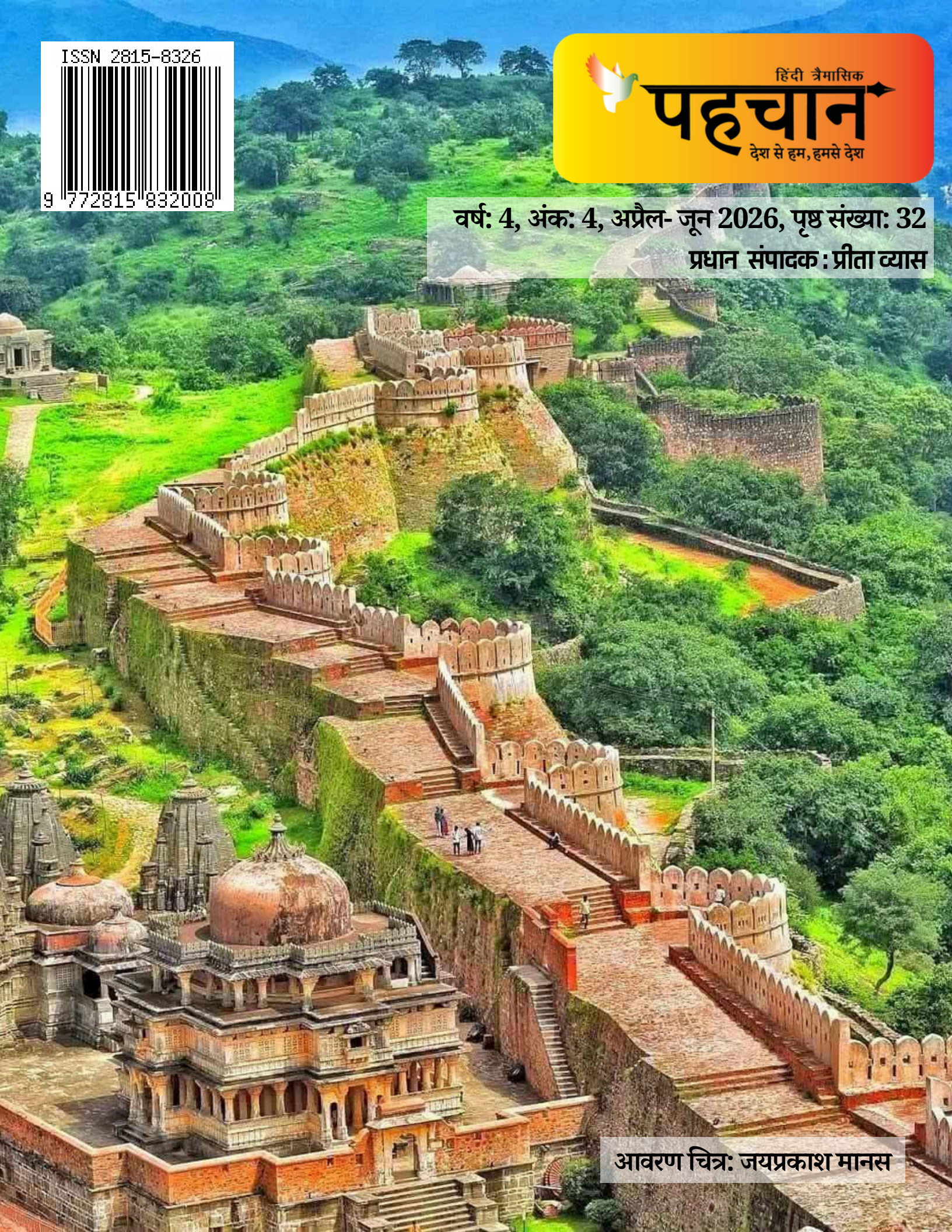

आवरण चित्र: जयप्रकाश मानस

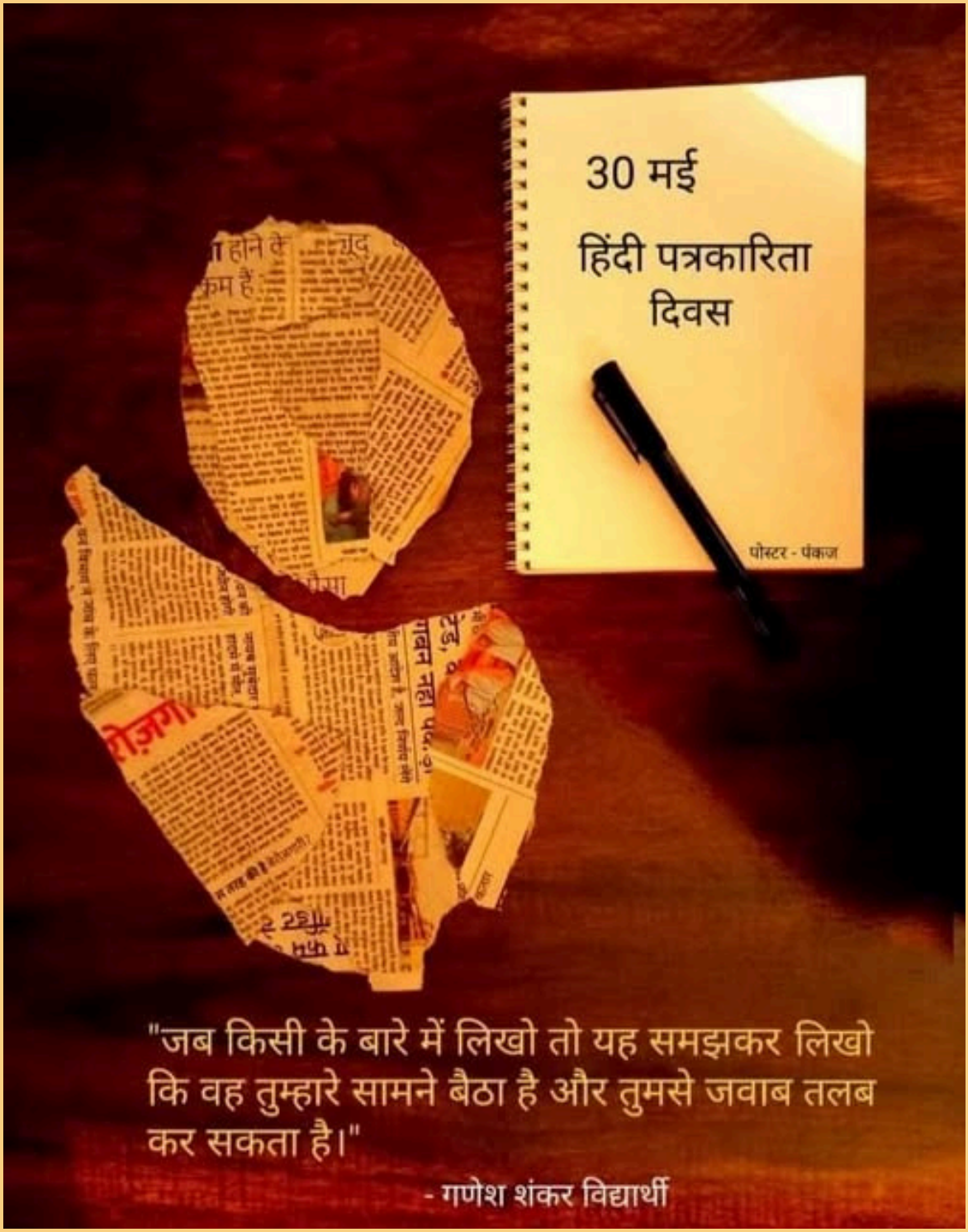
30 मई
हिंदी पत्रकारिता दिवस
पोस्टर - पंकज
"जब किसी के बारे में लिखो तो यह समझकर लिखो कि वह तुम्हारे सामने बैठा है और तुमसे जवाब तलब कर सकता है।"
- गणेश शंकर विद्यार्थी

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

संस्थापक/ प्रधान संपादक
प्रीता व्यास

सलाहकार संपादक
रोहित कृष्ण नंदन

ले आउट / ग्राफ़िक्स
प्रिया भारद्वाज

कवर पेज
जयप्रकाश मानस

प्रकाशक
पहचान

आकलैंड, न्यूज़ीलैंड

editor@pehachaan.com

डिस्क्लेमर

पत्रिका में प्रकाशित लेख, रचनाएं, साक्षात्कार लेखकों के निजी विचार हैं, उनसे प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं. रचनाओं की मौलिकता के लिए लेखक स्वयं ज़िम्मेवार है. कुछ चित्र और लेखों में प्रयुक्त कुछ आंकड़े इंटरनेट वेबसाइट से संकलित किए गए हो सकते हैं.

दो शब्द

साल के पहले महीने में हमने भाषा, साहित्य से जुड़े दो महत्वपूर्ण उत्सव मनाये. विश्व हिंदी दिवस और विश्व पुस्तक मेला. कोई भी देश हो, समाज या संस्कृति अपनी भाषा की ऊँगली छोड़ कर प्रगति नहीं कर सकती. भाषा किसी भी देश की संस्कृति की मूल्यवान उपलब्धि होती है. हमारे भाव बोध और आत्मबोध का ऐसा हिस्सा होती है, जिसे यदि हमसे काटकर अलग कर दिया जाए तो हमारा अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है. हर भाषा उसे बोलने वालों के लिए वो सुदृढ़ दुर्ग है जिसके भीतर उनकी पहचान सुरक्षित रहती है, क्योंकि भाषा किसी समूह के सांस्कृतिक प्रतीक-रूपों में जीवित रहती है.

विश्व की तीसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है अब हिंदी. हिंदी की इस वैश्विक उपस्थिति ने सिद्ध कर दिया है कि शब्द-सृष्टि का संसार अनंत संभावनाओं से परिपूर्ण है. अनेक विदेशी विद्वानों ने भी हिंदी की सेवा की है. इस दृष्टि से बेल्जियम के फादर कामिल बुल्के, मारीशस के अभिमन्यु अनंत, जापान के प्रो. क्यूया दोई, जर्मनी के लोथार लुत्से, मास्को के येवगेनी पेत्रोविच चेलिशेव, श्रीलंका की इंद्रा दासानायके, न्यूजीलैंड के रोनाल्ड स्टुअर्ट मैकग्रेगर तथा हंगरी के इमरै बंधा आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं.

भाषा हमें अपने इतिहास, मिथक और परंपरा से जोड़ती है. यह जुड़ाव ही सामूहिक अस्मिता बनकर अत्यंत मूल्यवान हो जाता है. यही कारण है कि विश्व भर में बसे भारतीय हिंदी के स्वाभिमान को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं. "पहचान" भी इसी प्रयास की एक कड़ी है. ये अंतर्राष्ट्रीय हिंदी वेब पत्रिका न्यूज़ीलैंड से प्रकाशित होती है. आप सबका साथ और सहयोग ही इसकी शक्ति है. जुड़िये, दूसरों को भी जोड़िये और जुड़े रहिये.

प्रीता व्यास

इस अंक में ...

पाठकीय प्रतिक्रियाएं 5

आलेख

खराब फोन (संजय सिन्हा) 6 - 7
बघेली पुरखों का वानस्पतिक ज्ञान (बाबूलाल दाहिया) 8 - 10
कुतुबमीनार की छाया (मनीष सोनी) 11

धरोहर

रणथंभौर दुर्ग (रूपेश उपाध्याय) 12 - 14

ग़ज़ल

सुहेल आज़ाद 15
मोहन पुरी 16
डॉ. प्रेम भटनेरी 17
दीवाना रायकोटी' सोम नाथ गुप्ता 18
मुमताज़ अज़ीज़ नाज़ां 19
सिया सचदेव 20

अनुवाद

स्टीव मैराबोली की अंग्रेजी कविता का नीता पोरवाल द्वारा हिंदी अनुवाद 21
राजेंद्र किशोर पंडा की ओड़िया कविता का संबिद कुमार दाश द्वारा अनुवाद 22
पाब्लो नेरूदा की मशहूर नज्म का अनुवाद खुर्शीद अनवर द्वारा- 23

कविता

ओ अपरचित (केदार नाथ सिंह) 24
मत पूछो (बाबुषा कोहली) 25
संस्मरण - एक याद : डॉ. मोहन नागर (भावेश दिलशाद) 26 - 27
बाल पहेलियां - (डॉ० कमलेन्द्र कुमार) 28
आध्यात्म - रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के संवाद 29
पुस्तक समीक्षा - समीक्षक: प्रोफेसर संजय द्विवेदी 30 - 31

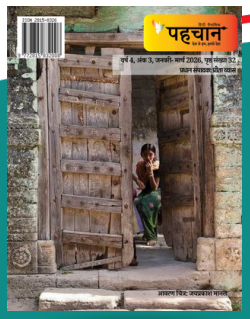

पाठकीय प्रतिक्रियाएं

हर अंक पूरी तरह पठनीय और रोचक होता है. मुझे "पहचान" के हर अंक का इंतज़ार रहता है.

- केवल वर्मा, न्यूज़ीलैंड

अति सुंदर बन पड़ा है पहचान का यह अंक. लघु कथा एवं कहानी सहित सभी रचनाएं लाजवाब हैं. "पहचान" निरंतर ऊंचाईयां पाए ,असीम शुभकामनाएं

- नीरजा खरे, भारत

पत्रिका का आवरण चित्र इतना भाया कि ना सिर्फ इसने सुधियों के द्वार खोले बल्कि कविता भी लिखवा दी-

भुला दिये घर बार गांव के, शहर चले आए,
तन्हा छोड़ा आंगन, उसमें पीपल उग आए.
पूछ रही दीवारें, दरवाजे भी अलख जगाते,
घायल घर की सुध लेने, कोई घर आ जाए.
जीवित है इतिहास, इन्हीं दर औ' दीवारों में,
आंगन की आस आज भी, बचपन इठलाए.
था साझा परिवार, एक ही चूल्हा जलता था,
तन्हाई में व्यथित घर, द्वार पर आंख गढ़ाए.

- डॉ कीर्ति वर्द्धन, भारत

प्रीता दीदी का हिंदी -प्रेम और साहित्यिक हस्तक्षेप अभिभूत करता है. यह सुखद है कि हमें उनका स्नेह प्राप्त है. जनवरी- मार्च 2026 अंक सुन्दर बना है. सुरजीत होश बड़सली जी की कविता बहुत बढ़िया है. शुभकामनाएं!

आत्ममंथन और स्वीकारोक्ति ज़रूरी है. मुक्तिबोध 'अंधेरे में' के एक अंश, 'पागल का गीत' के माध्यम से हमें आत्ममंथन करने के लिए उकसाते हैं. उनकी पंक्तियां याद आईं: 'बहुत-बहुत ज़्यादा लिया/ दिया बहुत-बहुत कम/ मर गया देश/ अरे जीवित रह गए तुम!"

जिन दोस्तों ने नहीं पढ़ी, उनके लिए कविता 'अंधेरे में' का पूरा अंश यहां दे रहा हूं. "पहचान" के पाठक 'अंधेरे में' पढ़कर, लौ प्राप्त कर सकते हैं-

'ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मेरे सिद्धांतवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!
उदरम्भरि बन अनात्म बन गए
भूतों की शादी में क़नात-सा तन गये
किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर
दुःखों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना
अपने ही ख़यालों में दिन-रात रहना
असंग बुद्धि व अकेले में सहना
ज़िंदगी निष्क्रिय बन गई तलघर,
अब तक क्या किया, जीवन क्या जिया!
बताओ तो किस-किसके लिए तुम दौड़ गए
करुणा के दृश्यों से हाय! मुंह मोड़ गए
बन गए पत्थर
बहुत-बहुत ज़्यादा लिया
दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुम!
लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,
जन-मन-करुणा-सी मां को हंकाल दिया,
स्वार्थों के टेरियर कुत्तों को पाल लिया
भावना के कर्तव्य त्याग दिए
हृदय के मन्तव्य, मार डाले
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया
तर्कों के हाथ उखाड़ दिए
जम गये, जाम हुए, फंस गए
अपने ही कीचड़ में धंस गए
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में
आदर्श खा गए
अब तक क्या किया, जीवन क्या जिया,
ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुम' (मुक्तिबोध)

- कमलजीत चौधरी, भारत

खराब फोन

संजय सिन्हा

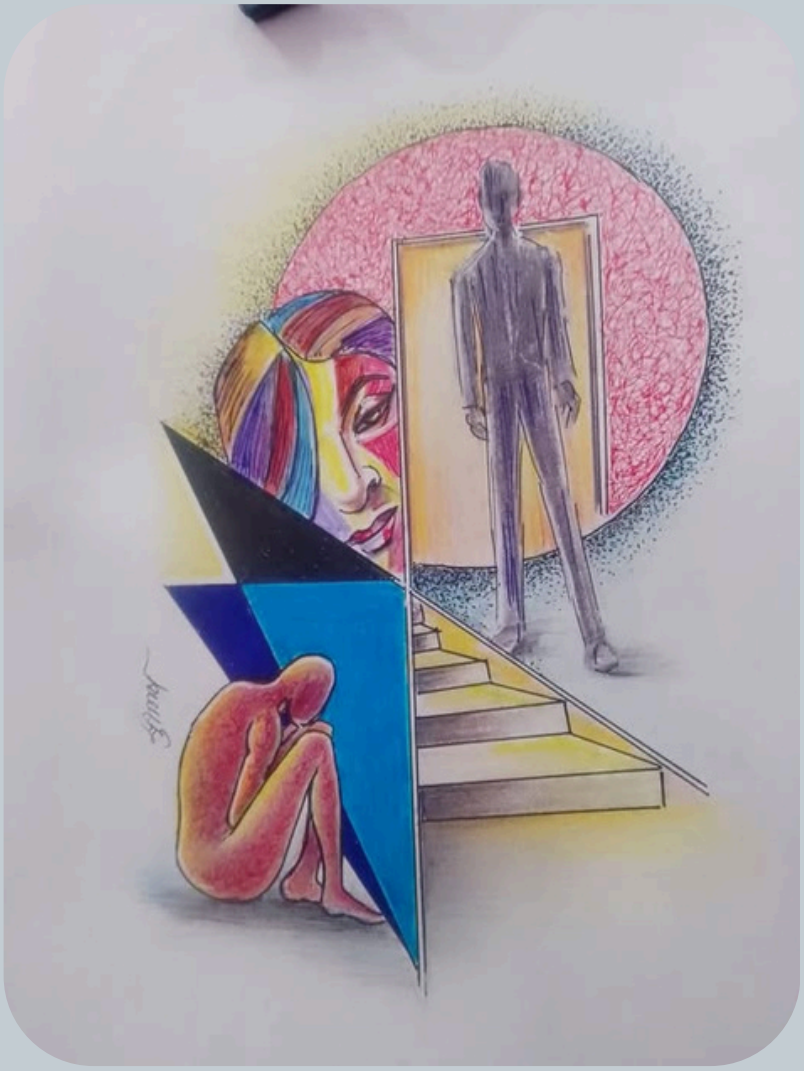

ज्योतिष शास्त्र 12 राशियों में मेष, कर्क, तुला तथा मकर को ज्यादा अहम आंकता है. इन्हीं राशियों के नाम पर तिथियों की संक्रांतियां भी हैं और सूर्य जिस राशि में प्रवेश करता है, तदनुसार ही संक्रांति जानी जाती है. पौष माह में सूर्य देव जैसे ही शीत के कफस की जड़ता को तोड़ मकर राशि में आते हैं तो मकर संक्रांति का पर्व मनाया जाता है. सूर्योपासना का सबसे बड़ा पर्व. नदियों के किनारे कल्पवास के उपक्रम का मौका और स्नान - दान का पुनीत अवसर.

खिचड़ी का यह विशेष दिवस उत्तराखंड में 'उत्तरैणिक कौथिक" का दिन है. आटे व गुड़ से बनाए जाने वाले "घुघूती" कौवों को बुलाकर खिलाने का दिन.

काले कौवा काले

घु घू ती माला खाले.

कहा जाता है कुमाऊं के चंद वंशीय नि:संतान राजा कल्याणचंद को भगवान बागनाथ की कृपा से पुत्र की प्राप्ति हुई तो बालक का नाम घुघूती रक्खा गया, जिसकी कौवे से अतिशय प्रीति हो गई. एक दूसरी जनश्रुति में कहा गया है कि भाई जब धुर पहाड़ में ब्याही अपनी बहन से मिलने आता है तो वह निद्रावस्था में होती है, भाई उसे जगाए बिना घर से लाए हुए पकवान की सामग्री छोड़ कर लौट जाता है. बाद में बहन रुआंसी होकर अपना विलाप एक कौवे को बताती है.

बूढ़ा अचकचाया. फिर अपना फोन हाथ में लेकर ये बुदबुदा हुआ दुकान से बाहर निकल पड़ा, "फोन ठीक है तो फिर मेरे बेटे का फोन आता क्यों नहीं?"

जिन दिनों मैं अमेरिका में रह रहा था, मुझे वहां ऐसे बहुत से बुजुर्ग मिलते थे, जिनका फोन ठीक था, लेकिन फोन पर घंटी कभी नहीं बजती थी. ऐसे लोग कभी शाम को यूं ही पार्क में मुझे मिल जाते तो मैं उनका अभिवादन कर उनके साथ गप किया करता था. उनसे उनके देश के बारे में पूछता था, और अपने देश के बारे में बताया करता था. वो इस बात पर बहुत आश्चर्यचकित होते थे कि कहीं कुछ देश ऐसे भी हैं, जहां लोगों के पास हर रोज इतना समय होता है, जिसे वो अपने बुजुर्ग माता-पिता के साथ गुजारते हैं, उस परिवार के बीच जहां बेटे के पिता और उनके पिता भी साथ रहते हैं.

अमेरिकी बुजुर्गों से बात करते हुए मैंने कभी उनके मन में इस बात का अफसोस नहीं देखा कि उनकी बहुत व्यस्त संतान बुढ़ापे में उनके साथ नहीं. उन्हें इस बात के लिए भी मैंने कभी मातम मनाते नहीं देखा कि कोई उन्हें फोन नहीं करता. और अपने फोन की न बजने वाली घंटी से उनके मन में ये ख्याल भी नहीं आता था कि कहीं उनका फोन खराब तो नहीं हो गया. दरअसल उनकी परवरिश ही कुछ इस तरह हुई होती है कि बुढ़ापे में उन्हें पता होता है कि कहां और कैसे रहना है. वहां सरकार की ओर से सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था इतनी पक्की है कि संतान से किसी तरह की आर्थिक या सामाजिक सुरक्षा की उन्हें दरकार नहीं रहती.

लेकिन संपूर्ण रूप से सुरक्षित उन बुजुर्गों से भी जब कभी मैंने दिल की बात की, मैंने उनकी आंखों से छलकते पानी को महसूस किया. हालांकि एक ऐसे समाज की कहानी उनके लिए कल्पना ही थी कि पिता, पिता का पिता और उनके पिता सब साथ एक ही छत के नीचे रह सकते हैं. वैसे आपको बता दूं कि अमेरिकी लोग बहुत भावुक होते हैं. मानवीय संवेदनाएं उनमें चरम पर होती हैं. मनुष्य की ज़िंदगी का मोल क्या होता है, ये अगर किसी को समझना हो तो एक बार उसे अमेरिका जरूर जाना चाहिए. फिर भी उनका बुढ़ापा बेहद सुरक्षित होते हुए भी अकेलेपन के दंश के बीच ही गुजरता है. मैं 'दंश' शब्द का इस्तेमाल इसलिए कर रहा हूं क्योंकि उन बुजुर्गों से जब मैं बातें करता था तो शाम के उस अकेलेपन में उन्हें मेरा साथ बहुत भाता था. दो-चार बुजुर्ग तो हर शाम इस बात का इंतजार किया करते थे कि कब संजय सिन्हा अपने फ्लैट से नीचे उतरेंगे और उनके साथ अपनी और उनकी कहानी साझा करेंगे.

अगर कोई मुझसे पूछे कि इस धरती पर सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है, तो मैं कहूंगा अमेरिका.

मैं दुनिया के बहुत से देश घूम चुका हूं. अगर ये कहूं कि दो-चार छोटे-छोटे देशों को छोड़ कर मैं सारा संसार देख चुका हूं तो इसे आप अतिशयोक्ति मत मानिएगा और अपने इसी अनुभव से कह रहा हूं कि अमेरिका एक अद्भुत देश है. वहां के लोगों का आदमी पर किया जाने वाला भरोसा अविश्वसनीय किंतु सत्य है. फिर भी मैं अमेरिका को छोड़ कर भारत चला आया, क्योंकि वहां के बुढ़ापे को मैंने बहुत अकेलेपन के बीच गुजरते देखा है.

जिन दिनों मैं अमेरिका गया था, उन दिनों दिल्ली में 'मॉल कांसेप्ट' नहीं आया था. उन दिनों इलेक्ट्रानिक क्रांति भी यहां नहीं आई थी. लेकिन मेरे यहां वापस आने के बाद मैंने महसूस किया कि अमेरिका भारत आ चला था. जो चीजें वहां मिलती थीं, वो सभी चीजें यहां मिलने लगी थीं. कुल चार साल वहां रह कर जब मैं भारत वापस लौट आया तो ये देख कर हैरान रह गया कि सचमुच अमेरिका भारत चला आया है.

पर एक सवाल तो रहेगा. क्या सचमुच तकनीकी क्रांति के साथ हम वहां की पारिवारिक व्यवस्था भी आयात कर रहे हैं? क्या सचमुच हमारा बुढ़ापा भी उनकी तरह तन्हा होगा? क्या हमारा फोन भी दुरुस्त होगा, लेकिन उसमें एक दिन घंटी बजनी बंद हो जाएगी? क्या कुछ दिनों बाद हमारे पास ढेर सारे कमरे होंगे, कोई रहने वाला नहीं होगा? क्या हमारे पास ढेर सारी बातें होंगी, कोई सुनने वाला नहीं होगा? हर कमरे में टीवी का सेट लगा होगा, देखने वाला कोई नहीं होगा?
ऐसे बहुत से सवालों से मन विचलित है.

जिस तरह हम अमेरिका से सब कुछ भारत ला रहे हैं, उसी तरह कहीं हम शायद जाने-अनजाने वहां की व्यवस्था भी यहां ला रहे हैं?
पर ये तो 'अर्ध आयात' होगा. याद कीजिए, बहुत साल पहले हम इंग्लैंड से लोकतंत्र चुरा कर भारत ले आए थे. एक ऐसा लोकतंत्र जिसमें हमने लोगों को अधिकार के विषय में तो बता दिया, लेकिन कर्तव्य के बारे में नहीं समझाया. हमने ये सोचने की जहमत भी नहीं उठाई कि एक अशिक्षित देश के लिए शिक्षा उसकी पहली जरुरत होती है. एक गरीब देश के लिए रोटी उसका पहला हक है. हमने लोकतंत्र के नाम पर बस इतना समझ लिया कि वोट देने का अधिकार हमें मिल गया, मतलब लोकतंत्र आ गया. उस 'अर्ध लोकतंत्र' की वजह से ही हम आज तक पीने के पानी और रोटी जैसी बुनियादी जरूरतों के लिए तरस रहे हैं. काश हमने जब लोकतंत्र इंग्लैंड से लिया था, तब हम वहां की पूरी व्यवस्था समझ पाए होते.

आज हम अमेरिका से एकल परिवार आयात कर रहे हैं, लेकिन इस परिवार के पीछे वहां सरकार की ओर से मिलने वाली सामाजिक सुरक्षा को तो हम आयात नहीं कर रहे ना. बिना उस सामाजिक सुरक्षा के ऐसा एकल परिवार एक दिन इस देश को इतना अकेला कर देगा कि आदमी आदमी के लिए तरस उठेगा. हो सकता है कल ये मेरी कहानी हो, लेकिन यकीन कीजिए परसो, नरसों ये आपकी, आपकी और आपकी कहानी भी हो सकती है. ये एक कल्पना है, जो बहुत जल्दी सच में तब्दील होकर रहेगी.
आपके बेटे के फोन की घंटी आपके फोन पर बजती रहे, इसके लिए जरुरी है कि आप अपने पिता को फोन करते रहें. जो बोएंगे काटेंगे वही, इस कहावत में आपको कोई संदेह तो नहीं है ना?

बघेली पुरखों का वानस्पतिक ज्ञान

बाबूलाल दाहिया

मध्य प्रदेश में चार प्रमुख बोलियां हैं- बुंदेली, बघेली, मालबी और निमाड़ी. हमारा यह प्राचीन चार जिलों का क्षेत्र बघेल खंड कहलाता है जिसमें अब रीवा, सतना, सीधी एवं शहडोल जिलों के अंदर ही नौ जिले तथा दो संभाग हो गए हैं. यह ऐसा क्षेत्र है जो पूरी तरह जंगल, पहाड़ों से घिरा है. प्राचीन समय में यहां की वर्षा आधारित खेती में प्राय: मोटे अनाजों की ही बहुलता थी. यही कारण था कि वैदिक काल में यह भू-भाग (करुष जनपद) नाम से जाना जाता था. उस करुष जनपद का आशय (अभाव ग्रस्त) क्षेत्र से था. पर अभाव ग्रस्त होने के कारण ही लंबे समय तक यह भू-भाग विदेशी आक्रांताओं से सुरक्षित भी रहा. वे गंगा यमुना के कछार से लेकर गुजरात तक का क्षेत्र तो जीत लेते थे फिर भी यह करूस जनपद महफूज रहता था क्योंकि मोटा समझा जाने वाला यहां का अनाज उन आक्रांताओं के भोजन में शामिल नहीं था.

हमारे पूर्वज भले ही अभाव ग्रस्त जीवन जीते रहें हों लेकिन उनका पेड़- पौधों से संबंधित वानस्पतिक ज्ञान उच्च कोटि का था. उन्हें सभी पेड़, पौधों, वनस्पतियों के गुण- धर्मों की पूरी-पूरी समझ थी. वह जानते थे किन औषधीय पौधों का उपयोग किन बीमारी में होता है और किन इमारती लकड़ियों का खेती-किसानी तथा छानी-छप्पर में. वे अपना बहुत सारा अनुभव जनित ज्ञान प्राय: लोकोक्तियों, कहावतों में सूत्र बद्ध कर देते थे जिससे उस ज्ञान का पीढ़ी दर पीढ़ी उपयोग होता रहे. यहां हम उनका कुछ सूत्र बद्ध मौखिक परंपरा का वानस्पतिक ज्ञान उसके भावार्थ सहित प्रस्तुत कर रहे हैं.

1. आपट क बिरबा चापट फरय.
सामन कर है चइत फरय.

वस्तुतः यह एक बघेली पहेली है जिसका उत्तर है- बबूल का पेड़. बबूल में फूल तो सावन मास (जुलाई- अगस्त) में आते हैं लेकिन चपटे आकार के फल चैत्र मास (मार्च अप्रैल) में लगते हैं.

2. हर्र बहेरा आमला, घिउ शक्कर संग खाय.
हाथी बगल दबाय के, पांच कदम उड़ जाय.

यानी जो कोई हर्रा, बहेरा और आवले के फलों का चूर्ण बना उसे घी और शक्कर के साथ खाता है तो शरीर में इतनी बला की ताकत आ जाती है कि वह हाथी को बगल में दबाकर 5 कदम की छलांग लगा सकता है. (वैसे यह कहावत अतिशयोक्ति पूर्ण है पर इसका आशय सिर्फ ताकत बढ़ने से लिया जाना चाहिए).

3. हर्र गुण तीस.
नीम गुण छत्तीश.

यानी हर्रे में यदि 30 औषधीय गुण हैं तो नीम उससे भी अधिक उपयोगी है क्योंकि उसमें 36 गुण पाए जाते हैं.

4. कइथा कहुआ बेल बहेरा.
ईं लकड़ी मा लगय मकोरा.

यानी कैथा, अर्जुन वृक्ष, बेल और बहेरा यह ऐसे लकड़ी वाले पेड़ हैं जिनमें छिद्र कर देने वाला मकोड़ा कीट लगता है इसलिए इनका उपयोग घर के छप्पर- छानी में नहीं करना चाहिए.

5. जनम जुगाध खजूर क मानी.
एक शर्त की परय न पानी.

यानी यदि खजूर की मयार (धरनी) दीवाल में लगाकर छप्पर बनाया जाय तो वह कभी खराब नहीं होती और सैकड़ों साल उसी तरह बनी रहती है, शर्त यह है कि उसमें पानी न पड़े क्योंकि पानी पड़ने पर तुरंत ही सड़ जाती है.

6. बेंट खैर का होय धोखारी.
टूट के दूरी परय कुल्हारी.

यानी यूं तो खैर की लकड़ी बहुत सुंदर होती है परंतु उससे कुल्हाड़ी का बेंट नही बनाना चाहिए क्योंकि अगर कुल्हाड़ी का बेंट बनाया जाय तो वह चटक कर टूट जाता है.

7. धनकट धबई कारी.
निकहा बेंट कुल्हारी.

यानी कुल्हाड़ी के बेंट के लिए धनकट, धबा और कारी नामक लकड़ी अच्छी मानी जाती है.

8. पात कसौधी विख हरय, फूल रतोंधी जाय.
जड़ से सांप डेरात है, फर से बाघ डेराय.

यानी कसौंधी नामक औषधीय पौधा इतना उपयोगी होता है कि उसके पत्ते से विष दूर होता है और फूल के रस को लगाने से रतौंधी नामक आंख का रोग अच्छा हो जाता है उधर उसके फल को देख कर जहां बाघ डरता है वहीं जड़ को देख कर सांप.

9. मैं ता हौं खम्हेर सगमन का, लगउं लहुरबा भाई.
टेबिल कुर्सी केमरा चउकाठ, चाहय जउन बनाई.

यानी खम्हार के पेड़ का कथन है कि मैं अपने गुण के कारण सागौन का छोटा भाई कहलाता हूं क्योंकि मेरी लकड़ी से टेबिल, कुर्सी, किवाड़ और चौखट सभी कुछ बन सकता है.

10. कहय बांस मोसे या जग मा, को दूसर उपकारी.
झउआ टोपरी चाह बनाई, चाह लगाई बारी.

यानी बांस का कथन है कि मुझसे अधिक दुनिया में मनुष्य का उपकार करने वाला दूसरा कोई नहीं है. आप मेरा चाहे टोकरा-टोकरी बना लें और चाहे खेत में बाड़ लगा लें.

11. दूध बियारी जे कारय, सोधी हर्रय खाय.
जानकार अइसन कहय, वा सौ मा ठहराय.

यानी जो लोग प्रति दिन रात्रि के भोजन में दूध का सेवन करते हैं और शोधी हुई हर्र खाते हैं वह 100 वर्ष तक जीवित रहते हैं.

12. सगमन सरई दहिमन राना.
असी बरिख ना होंय पुराना.

यानी सागौन, सरई, दाहिमन और अनाजों का राजा कोदो ऐसे हैं जो अस्सी वर्ष तक खराब नहीं होते.

13. कलहारी जर पीस के, अकमन दूध मिलाय.
बीछी काटे मा धरय, डंक सहित मिट जाय.

यानी कलहारी यानी (अग्नि शिखा) की जड़ को पीस कर और उसमें अकोड़ा के दूध को मिला कर यदि बिच्छू के काटने के स्थान पर रख दिया जाय तो वह दर्द डंक समेत अच्छा हो जाता है.

14. कच्चा बांस लागबय कोरा.
भादों भरे उचाबय डेरा.

यानी यदि कोई बांस के एक-दो वर्ष के कच्चे पेड़ को काट उसे अपने छप्पर में लगता है तो उसका छप्पर बारिश के बीच भादों मास यानी कि अगस्त- सितंबर में ही घुन कर बैठ जाता है और उसे दूसरे के घर में अपना घर-गृहस्थी का सामान रखना पड़ता है.

15. हर सांदन धबई कय नास.
जाय न हरबी बढ़ई पास.

यानी यदि अपने हल को सांदन नामक लकड़ी से बनाया जाय और उसकी नास धबा नामक लकड़ी की हो तो बार-बार उसे सुधरवाने बढ़ई के घर नहीं जाना पड़ता.

16. हर्र बहेरा आंवला, माटी पात्र फुलाय.
धोबय आंखी भोर उच, नेत्र रोग मिट जाय.

यानी हर्रा, बहेड़ा और आवले के फल को रात्रि में किसी मिट्टी के बर्तन में पानी भर कर भिगा दिया जाय और फिर सुबह उसी पानी से आंखों को धोया जाय तो हर प्रकार के नेत्र से संबंधित रोग मिट जाते हैं.

एक ओर जहां तमाम वनस्पतियों को उपयोगी बताया गया है तो वहीं कुछ पेड़ों को वे अशुभ भी मानते थे. एक कहावत इस प्रकार भी है-

आगे अमली पाछू बेर.
का करय भूरी अकेल.
उनके अनुसार घर में भूरे रंग की बिल्ली को रखना शुभ था पर अगर सामने इमली का पेड़ और पिछवाड़े बेर का पेड़ हो तो उस घर की दरिद्रता भूरी बिल्ली भी दूर नहीं कर सकती.

बेर का खराब बताना शायद उसके कांटे के लगने से रहा हो पर इमली खाने से वात रोग होना इसका कारण हो सकता है. इस तरह हमारी बघेली बोली में ऐसी अनेक अनाम व्यक्तियों द्वारा रचित कहावतें हैं जिनमें उनका अनुभवजनित ज्ञान समाहित है.

कुतुबमीनार की छाया

मनीष सोनी

21 जून, जब साल का सबसे बड़ा दिन होता है, तो कुतुबमीनार की छाया 12 बजकर 16 मिनट पर धरती पर नजर नहीं आती. कारण?
दिल्ली 28.5 डिग्री अक्षांश पर स्थित है और सूरज 21 जून के दिन मध्याह्न के समय कर्क रेखा जो कि 23.5 डिग्री है, उसके ठीक ऊपर रहता है. कुतुबमीनार 5 डिग्री कोण से दक्षिण की ओर झुका है, तो सूरज ठीक इसके ऊपर चमकता है, ठीक इसकी लाइन में, और छाया इसी कारण धरती पर नजर नहीं आती.

कुतुबमीनार जैसा सब जानते हैं, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के खगोल विज्ञ वराहमिहिर के समय उनके निर्देश के अनुसार बनाया गया था, खगोलीय गणना के लिए, और इसी कारण इसका झुकाव 5 डिग्री दक्षिण की ओर रखा गया. इस मीनार के चारों ओर 27 मंदिर थे, नक्षत्र या तारामंडलों के लिए, जिसके ऊपर गोल गुंबद थे, और उनमें से 7-8 अभी भी बचे हैं. वराहमिहिर के नाम पर ही इस वेधशाला के इलाके का नाम मिहिरावली रखा गया, जो अब महरौली कहा जाता है.
ये एक छोटे से पर्वत के शिखर पर बनाया गया था, जिसे विष्णु गिरि कहा जाता था और इस मीनार को विष्णु स्तंभ कहा जाता था.

भारतीय धातुकर्म जो उस समय अपने उत्कर्ष पर था, उसका इस्तेमाल करते हुए मंदिर के सामने धातु का जो स्तम्भ बना है, जो 1,600 वर्षों से बिना जंग लगे खड़ा होकर आज भी मेटालर्जी के आधुनिक वैज्ञानिकों के लिए आश्चर्य का विषय है, उसे गरुड़ स्तंभ कहा जाता था, जो विष्णु मंदिर का दीप स्तंभ भी था, उस पर ये जानकारियां ब्राह्मी लिपि में ढली हैं, जिसे इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने के प्रेमी, मिटा नहीं पाए. पहले ये विष्णु स्तंभ सात मंजिला था, जो भूकंप और रख-रखाव के अभाव में 1,200 ईस्वी तक आते-आते टूटकर दो-तीन मंजिला ही शेष बचा. अब 800 वर्ष तक बिना मेंटेनेंस के क्या चीज बच पाएगी?

एक टूटे हुए विष्णु स्तंभ को कुतुबमीनार में बदलने की प्रक्रिया 1,192 में शुरू हुई, पर उसका 5 डिग्री का झुकाव बरकरार रखने की मजबूरी रही, और इसी कारण आज भी 21 जून को सूरज इसकी रेखा का आदर करते हुए धरती पर इसकी छाया गायब कर देता है.

रणथंभौर दुर्ग

रूपेश उपाध्याय

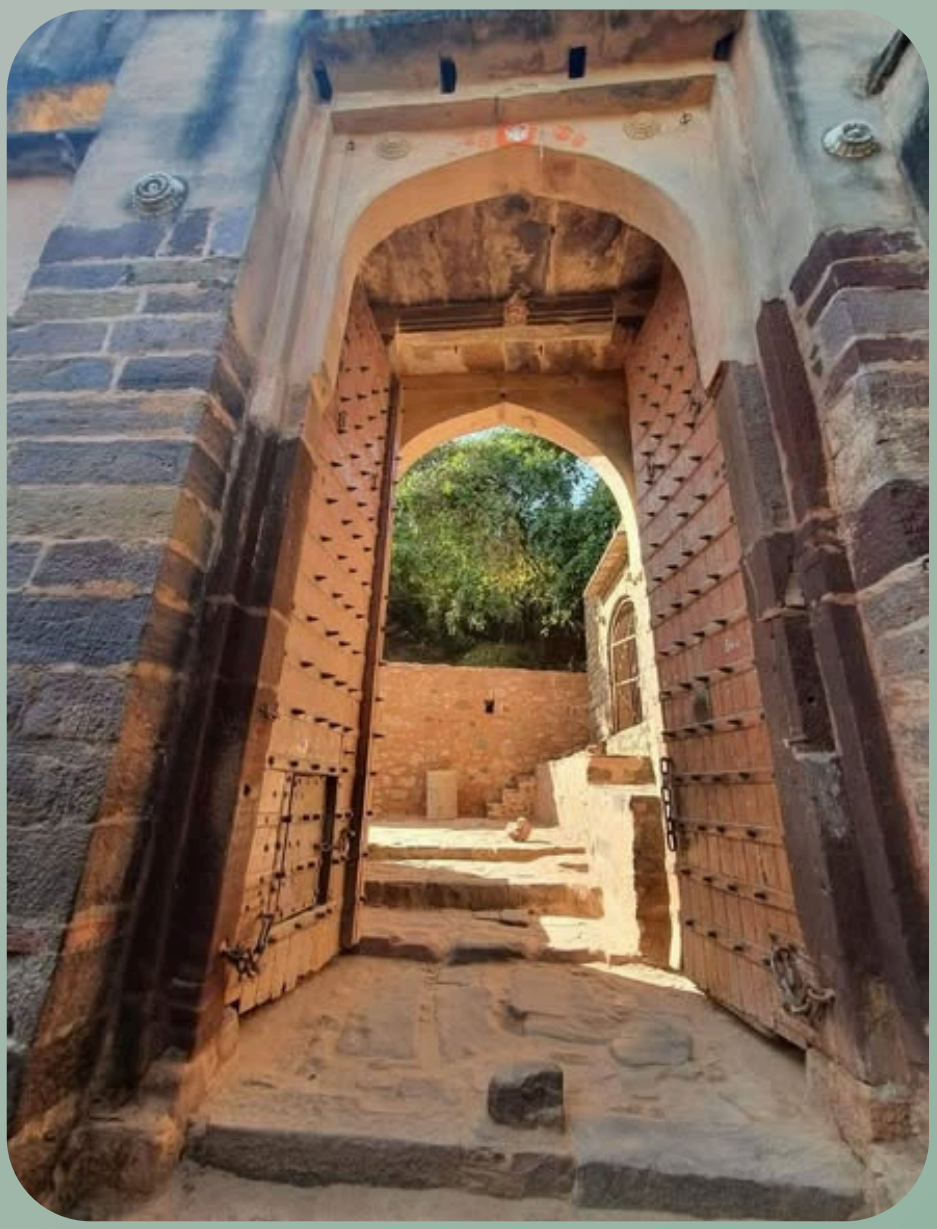

" सिंह सुवन, सत्पुरुष वचन, कदली फले एक बार. तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजी बार." यह कहावत रणथंभौर को शक्तिशाली राज्य के रूप में स्थापित करने वाले राजा हम्मीर देव के संबंध में कही जाती है. उन्नीस वर्ष में 17 युद्ध जीतने वाले इस राजा ने अपने शरणागत को सुरक्षा देने के लिये अपनी हठ पर कायम रहते हुए अपना राज्य ही दांव पर लगा दिया था.

एक लंबे समय बाद हमारा रणथंभौर जाना हो पाया था. रणथंभौर नेशनल पार्क में सफारी के बाद सुदृढ़ दुर्ग रणथंभौर देखे बगैर लौट पाना हमारे लिये संभव नहीं था. सुप्रशिद्ध त्रिनेत्र गणेश पर गये हुए भी लंबा समय बीत गया था. इसलिये इनके दर्शन करना भी अनिवार्य था, सो यहां का कायदा और परंपरा निभाते हुए हमने सुप्रशिद्ध त्रिनेत्र गणेश जी के दर्शन किये, इसके साथ ही हमें रणथंभौर जैसे दुर्गम दुर्ग को देखने का अवसर भी मिल गया.

रणथंभौर दुर्ग भारत के सर्वाधिक मजबूत दुर्गों में से एक है जिसने शाकम्भरी के चहमान साम्राज्य को शक्ति प्रदान की. कहते है कि इसका निर्माण 5वीं शती ई में महाराजा जयंत ने कराया था. 12वी शती ईसवी में पृथ्वीराज चौहान के अधीन आने से पहिले यहां यादवों का राज्य था.

यह किला विंध्य और अरावली पर्वत श्रृंखलाओं की संधि पर बना है. सात पहाड़ियों के ऊपर बना यह किला समुद्र सतह से 481 मीटर ऊंचाई पर है. रन थंभ नामक पहाड़ी पर बने इस किले की विशाल रक्षा करती प्राचीर में सात द्वार हैं. यहां पर महत्वपूर्ण स्मारकों में हम्मीर महल, हम्मीर की छोटी- बड़ी कचहरी, बादल महल, बत्तीस खम्बा छतरी, झांभरा, भांवरा आदि प्रमुख हैं.

इस किले को सर्वाधिक ख्याति पांचवी सदी में निर्मित त्रिनेत्र गणेश मंदिर कारण मिली है. दूर- दूर तक कोई भी शुभ कार्य इन गणेश जी के आमंत्रण और स्मरणबगैर नहीं होता. त्रिनेत्र गणेश जीके दर्शन हेतु श्रद्धालु दूर-दूर से आते हैं. यहां की भौगोलिक स्थिति ने इसे बहुत ही मजबूत और अजेय दुर्ग बनादिया है. चंबल, बनास नदी से इसकी सीमाऐं लगी हैं. जंगल और पहाड़ियों से घिरे इस क्षेत्र में इस पहाड़ी दुर्ग पर पंहुच पाना आसान नहीं था.

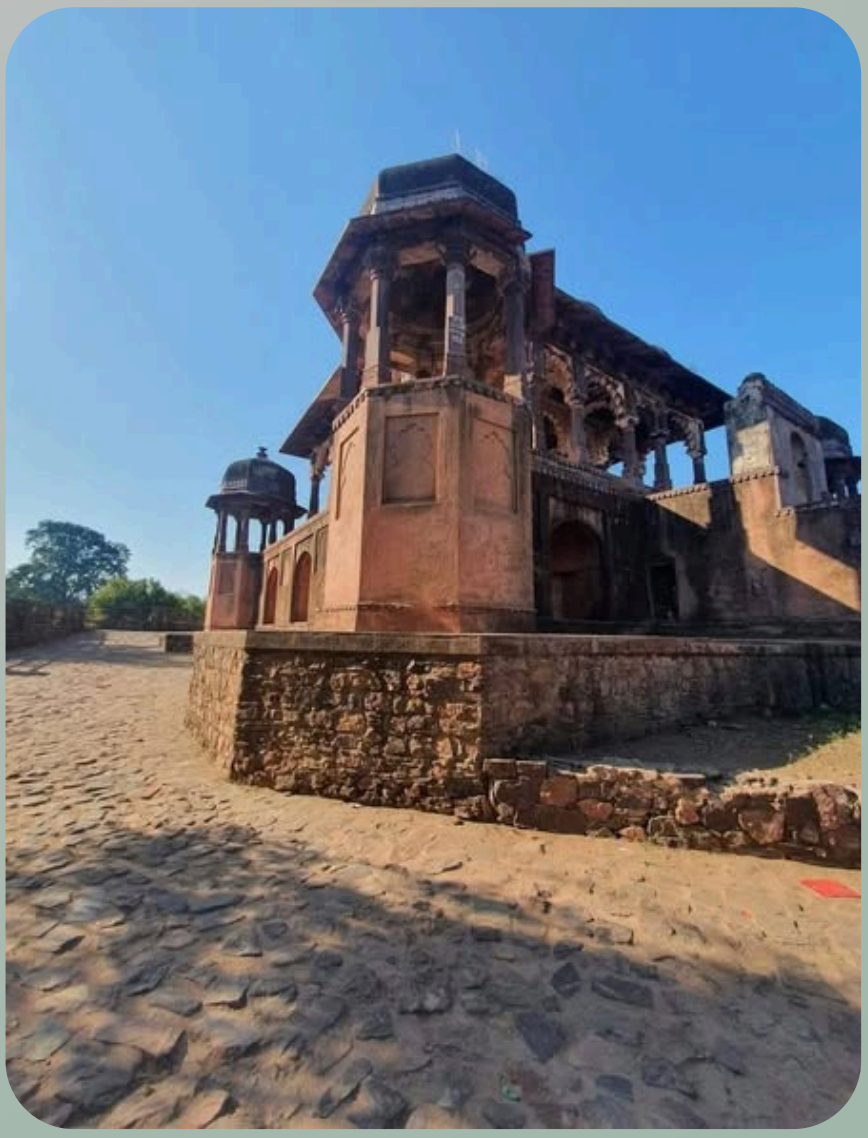

इस किले के निर्माण और इसे सशक्त बनाने में राव हम्मीरदेव (1282 - 1301ई) की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है. इस किले के बारे में अबुल फ़ज़ल ने कहा था कि "अन्य सभी दुर्ग नंगे है, यह बख्तर बंद है।"
सन 1272 ई में राजा जैत्र सिंह के यहां रणथंभौर में जन्मे हमीरदेव आरंभ से ही बहादुर थे. उनके पराक्रम को देखते हुए उनके पिता ने जीते जी उन्हें राजगद्दी सौंप दी थी. उन्होंने 19 वर्ष के शासन काल में 17 युद्ध जीते और रणथंभौर की सीमाओं को कोटा, बूंदी तक फैला दिया था. रणथंभौर की बढ़ती शक्ति को सहन कर पाना दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के लिए संभव नहीं था. उसने दो बार रणथंभौर को जीतने की कोशिश की किंतु विफल रहा. इसी बीच उसके कुछ विद्रोही सरदार हम्मीर से आ मिले. हम्मीर देव ने उन्हें शरण दे दी. सुल्तान ने उन्हें वापिस करने की मांग की, जो नहीं मानी गई. तब अलाउद्दीन ख़िलजी ने रणथंभौर पर आक्रमण कर दिया तथा छान के किले पर आधिपत्य कर लिया. सुल्तान ने फिर उससे विद्रोहियों को वापस करने को कहा पर हम्मीर देव नहीं माने. सुल्तान ने किले का घेरा डाल दिया. यह घेरा लंबे समय तक चला. किले में रसद की कमी हो गई. हम्मीर देव के कुछ सहयोगियों ने विश्वासघात कर ख़िलजी को किले का भेद बता दिया.

तब किले का दरबाजा खोल कर हम्मीर देव सेना सहित केशरिया बाना पहिन कर निकल पड़े. राजपूत पुरुषों ने शाका किया और महारानी रंगादेवी ने किले की सभी स्त्रियों सहित जौहर किया. इस प्रकार विश्वासघात के कारण हम्मीरदेव वीरगति को प्राप्त हुए, पर उन्होंने अपने हठ को नही छोड़ा.

इस कारण यहां यह कहावत प्रचिलित है -

सिंह सुवन, सत्पुरुष वचन, कदलीफले एक बार.
तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़े न दूजीबार.

यह किला एक शताब्दी तक चित्तौड़ के महाराणाओं के अधीन भी रहा है. खानवा के युद्ध में घायल होने पर महाराणा सांगा को उपचार हेतु रणथंभौर दुर्ग में ही लाया गया था. आराम मिलने पर बे चंदेरी में बाबर का मुकाबला करने रबाना हुए. चंदेरी पहुंचने के पूर्व एरच में उनका निधन हो गया. सन 1558 ई में यह किला अकबर के अधीन आ गया. अकबर ने रणथंभौर राज्य को भंग कर दिया. बादमें यह जयपुर राज्य अधीन आ गया, जिन्होंने इस किले की मरम्मत कराई. इनके शासन काल में सबाई माधौपुर का विकास हुआ.

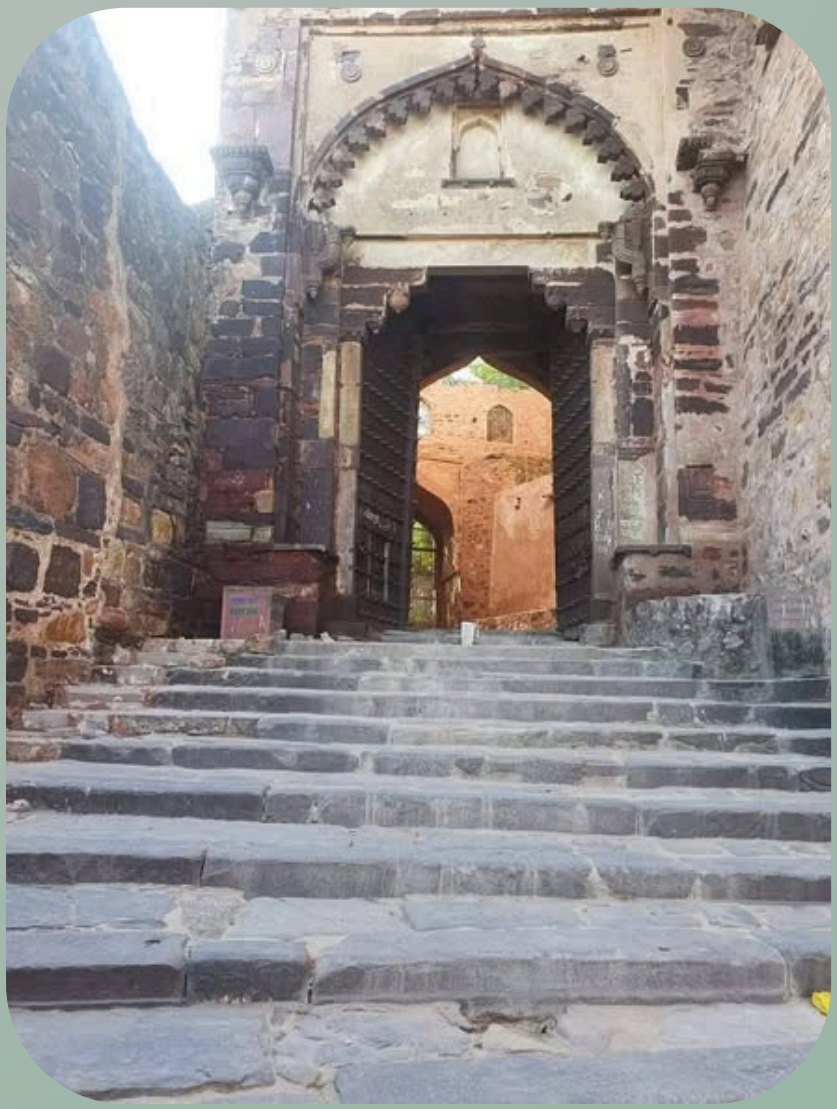

रणथंभौर वीरान हो गया.

रणथंभौर को नेशनल पार्क बनने और इस किले भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षण किये जाने के बाद फिर यहां रौनक बिखरी है. इस किले को विश्व विरासत घोषित होने के बाद इस किले के संरक्षण का कार्य चल रहा है. उम्मीद है निकट भविष्य में यह पुनः पुराने वैभव को प्राप्त कर सकेगा.

सुहेल आज़ाद

(1)

इंकारे मोहब्बत, नक़्शे जफ़ा, इक़रार से बेहतर होता है.
हर रंगे ख़मोशी, बारे वफ़ा, इज़हार से बेहतर होता है.
मौजूद तमाशा है, तो रहे, मौहूम तमन्ना है, तो रहे
ये गोशा-ए- दिल भी एहले जुनूं! बाज़ार से बेहतर होता है.
दामन को कभी फैलाते हैं? कब तुझ से आस लगाते हैं,
कशकोल का भरना किसने कहा पिंदार से बेहतर होता है?
बस एक तबस्सुम फीका सा, बस एक तरन्नुम हल्का सा,
वादों के शिकस्ता, ला हासिल अंबार से बेहतर होता है.
हर ख़्वाब को मरते देखा है, इक रात गये की दस्तक ने,
आंखों से उमीदें उठ जाना इसरार से बेहतर होता है.
ख़ुशबू सी गुज़िश्ता मौसम की, आती है हवा के शाने पर,
"दरवाज़ा भले ही बंद रहे, दीवार से बेहतर होता है."
आज़ाद! ना अब इम्काने वफ़ा, उम्मीद का चेहरा धुंधला सा,
हां दिल का मिट जाना भी दिले बीमार से बेहतर होता है.

(2)

नशा पैरों पे तारी, बे क़रारी.
सफ़र अब भी है जारी, बे क़रारी.
जुनूं अपनी ख़िरदमंदी पे ख़ुश है,
कहां तक पुख़्ताकारी, बेक़रारी.
ज़रा सी लग़ज़िशे नोके क़लम पर,
उठी सब पर्दादारी, बे क़रारी.
ग़ज़ल को अपनी रौ में बहने दीजे,
कहां तक आबयारी, बे क़रारी.
तुम्हरी साअतें हासिल नहीं तो,
हमारी उम्र सारी बे क़रारी.
जहां तक भी संवारी ख़म ना निकले,
तेरी ज़ुल्फ़ों से यारी बे क़रारी.
मोहब्बत को कहां हम रास आए,
गरां हमको हमारी बे क़रारी.
हमें आज़ाद! उन आंखों में रखना,
जहां हो बे क़रारी - बे क़रारी.

मोहन पुरी

(1)

इस तरह इस दौर में अब इश्क़ का हासिल मिले.
आंख में पुरवाइयां और होंठ पर संदल मिले.
कट रहे टुकड़ों में कितने गुल-बदन ये देखिए,
हर कदम पर प्यार के, महबूब के कातिल मिले.
क्यों मनाएं हादसों का हम भला अफ़सोस कुछ,
ना किसी से दिल मिले अब ना किसी में दिल मिले.
भटकता दिन-रात गलियों हर युवा लाचार है,
बांटते कोकीन हमको रहनुमा ग़ाफ़िल मिले.
ज़िरह जब पूरी हुई तो यूं अदालत ने कहा,
चंद अपने ही हमेशा क़त्ल में शामिल मिले.
कंठ से हम गा रहे चौपाइयों की टेर पर,
ना कोई सच्चा मिले अब ना कोई बातिल मिले.
बांह में भर लिपट जाती फूल-कलियों, शाख से
ख़ुशबुओं को राह चलते जब कोई जंगल मिले.

(2)

वे बोलेंगे, तय बोलेंगे.
सिद्ध गिद्ध की जय बोलेंगे.
आधा झूठ महाभारत का,
पूरा कर संजय बोलेंगे.
नाग-यज्ञ फिर रचने ख़ातिर,
फिर से जनमेजय बोलेंगे.
चील बानियां तुम्हें मुबारक,
हम चिड़िया की लय बोलेंगे.
आडावळ क्या है मुरधर में,
आखर ग्रंथालय बोलेंगे.
ये देखो मुरदों के टीले,
जीवन का अभिनय बोलेंगे.
पूरी गांठ बांध ली मन में,
बोलेंगे निर्भय बोलेंगे.

डॉ. प्रेम भटनेरी

(1)

सीख लो ज़िन्दगी अमर करना.
प्यार के बीज को शजर करना.
काम ये सख़्त है मगर करना,
अपनी हस्ती को मोतबर करना.
रुख़ हवाओं का भांपकर करना,
आसमानों पे जब सफ़र करना.
इश्क़ गूँगा है, जबकि ख़्वाहिश थी,
उसकी आवाज़ पे सफ़र करना.
एक दिन ग़म हमें सिखा देगा,
अपने अल्फ़ाज़ में असर करना.
तीर खाये हैं सब कलेजे पर,
हमने सीखा नहीं मफ़र करना.
नाख़ुदा पार भी उतारेगा,
बीच में मत अगर मगर करना.
सीख जाएंगे हम मुहब्बत में,
आंसुओं में गुज़र बसर करना.
रात भी है तो उसकी मर्ज़ी से,
जिसके हाथों में है सहर करना.
तीर वापस कभी नहीं आता,
जो भी करना वो सोचकर करना.
"प्रेम" रहता है जिस बुलंदी पर,
उस बुलंदी को तुम भी सर करना.

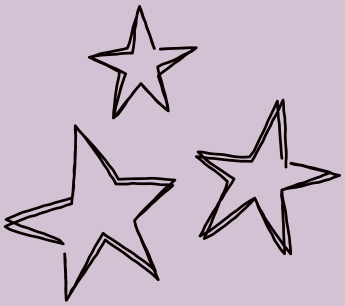

(2)

बात ही बात में मुझ से क्या कह गया.
रात भर उसको ही सोचता रह गया.
जब निकाला मुझे उसने मझधार से,
नाख़ुदा को मैं अपना खुदा कह गया.
मैने सपनो में बरसों संजोया जिसे,
आंख खुलने पे वो ख़्वाब भी ढह गया.
चारागर के हुनर में कमी तो न थी,
ज़ख्म फिर मेरा कैसे हरा रह गया?
रेल की पटरियों की तरह हम रहे,
साथ चलते हुये फासला रह गया.
इश्क की इंतिहा की सनद मिल गई,
बात उसकी गलत थी सही कह गया

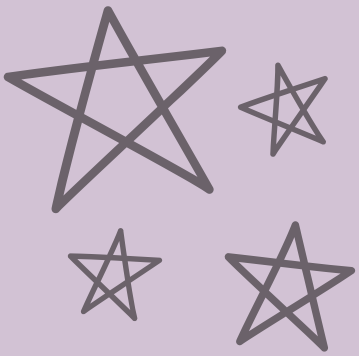

दीवाना रायकोटी' सोम नाथ गुप्ता

(1)

है कितना सफ़र-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
हैं कहां मंजिल-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
कौन जाने कब, कोई हादिसा हो जाये,
रह जाए लुत्फ़-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
शक में गुज़र करते हो, शाम-ओ-सहर,
कब हो जाए आह-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
खुद से ख़फ़ा हो, भूले वफ़ा हो,
रह जाये तन्हा ज़िंदगी, किसे ख़बर.
रहता है वक़्त, मुसलसल रफ़्तार में,
कब बदले दौर-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
आनंद लिजिए बारिश का, बरसात में,
क्या बदले रंग रुत-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.
ख़त्म होती जाये, इंसां में इंसानियत 'दीवाना',
फूट जाये कब बुलबुला-ए-ज़िंदगी, किसे ख़बर.

(2)

थक गया हूं दास्तान-ए- गम सुनाते-सुनाते.
बहने लगते हैं आंसू मुस्कुराते-मुस्कुराते.
दिल बहला कर वो ग़ायब हो गया,
मैं तन्हा हो गया दिल लगाते-लगाते.
वो जो पत्थर था राह का कभी,
आज ख़ुदा हो गया लुभाते-लुभाते.
होंठों पे चुप्पी आंखें मुस्कुराती रहीं,
भेद खुल गया सारा छुपाते-छुपाते.
इश्क़ के पन्ने पर दर्द दर्ज देख कर,
हो गये ज़ख़्म हरे मरहम लगाते-लगाते.
दयार-ए-इश्क़ में आ बसा अनजान मैं,
दामन पकड़ा बैठा दामन छुड़ाते-छुड़ाते.
था तो मुश्किल देना मगर पकड़ा आया,
मोहब्बत का पहला ख़त घबराते-घबराते.
जला बैठा है 'दीवाना' हाथ ख़ुद के,
ग़ैरों को आंच से बचाते-बचाते.

मुमताज़ अज़ीज़ नाज़ां

(1)

कोई हमदम न आशना बाक़ी.
अब यहां कुछ नहीं बचा बाक़ी.
सिर्फ़ इतना कहा कि कैसे हो,
और सब दिल में रह गया बाक़ी.
इब्तेदा है मेरे जुनूं की अभी,
है अभी मेरी इंतेहा बाक़ी.
बाग़ दिल का उजड़ चुका कब का,
है निगाहों में इक ख़ला बाक़ी.
अब ये बोसीदा तन उतार भी दूं,
क्यूं रहे रूह पर क़बा बाक़ी.
और तो कुछ नज़र नहीं आता,
रह गई गूंजती सदा बाक़ी.
मुंह ख़ज़ानों का खोल दे मौला,
हैं अभी कितने ही गदा बाक़ी.
हैं सज़ाएं तो पै ब पै जारी,
देखें कब तक रहे जज़ा बाक़ी.
जुस्तजू में अभी नज़र है मेरी,
है अभी दिल में इक हिरा बाक़ी.
चंद यादों का इक ज़ख़ीरा है,
और जो कुछ था मिट चुका बाक़ी.
सर ब सजदा हूं वक़्त के आगे,
अब कहां वो मेरी अना बाक़ी.
पी लिया हुस्न वक़्त की रौ ने,
अब वो रौनक़ न वो ज़िया बाक़ी.
रायगां है ये ज़ो'म-ए-इस्लामी,
हम में अब है फ़क़त रिया बाक़ी.
जल गई रूह, मिट गया एहसास,
मुझ में "मुमताज़" क्या रहा बाक़ी.

(2)

फ़र्श से अफ़लाक तक पहुंची है रुसवाई मेरी.
जाने क्यूं बेचैन रक्खे सबको दानाई मेरी.
कोई साया भी पड़े मुझ पर तो दम घुटता है अब,
मुझको तन्हा एक पल छोड़े न तन्हाई मेरी.
जिस जगह मैं हूं वहां कोई नज़र आता नहीं,
क़ैद मुझको रात दिन रखती है यकताई मेरी.
कोई क्या समझे मेरे दिल की तहों के ज़ाविए,
ख़ुद मुझे कब मापनी आई है गहराई मेरी.
वक़्त आया तो किसी दीवार का साया न था,
हां, यही दुनिया रही बरसों तमाशाई मेरी.
उसका वादा था दुआ मक़बूल करने का मगर,
मांगती हूं, तो नहीं होती है सुनवाई मेरी.
रास्ता लंबा है, मंज़िल का निशां कोई नहीं,
चलने दे लेकिन न मुझको आबलापाई मेरी.
आज भी "मुमताज़" मुझको वो ज़माना याद है,
जब हुआ करती थी अंजुम से शनासाई मेरी.

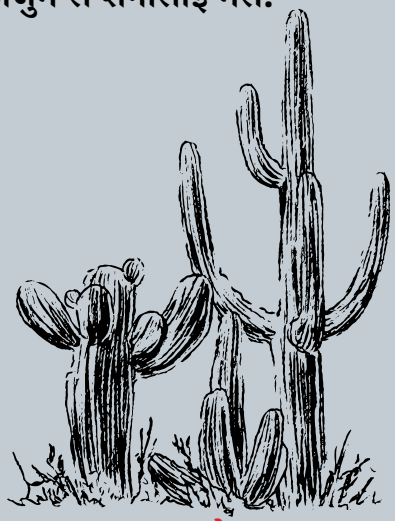

सिया सचदेव

(1)

एक मुद्दत से वो मिला ही नहीं.
दूर है फिर भी फ़ासला ही नहीं.
मैने जितनी भी दुनिया देखी है,
उससे बेहतर कोई लगा ही नहीं.
कैसे मैं अपने आप को देखूं ,
मेरे कब्ज़े में आइना ही नहीं.
चल दिया फेर कर नज़र ऐसे,
जैसे मुझको वो जानता ही नहीं.
मेरी दुनिया उजड़ गई सारी,
उनको लगता हैं कुछ हुआ ही नहीं.
हाथ उठते तो है दुआ के लिए,
और लब पर कोई दुआ ही नहीं.
चाह जीने की जब नहीं दिल में,
फिर मरज़ की तेरे दवा ही नहीं.
नाम के थे जो खोखले रिश्ते,
उनसे दिल तो कभी मिला ही नहीं.

(2)

तमन्नाओं में शिद्दत अब नहीं है.
जो पहले थी वो हालत अब नहीं है.
नज़र के ज़ाविये बदले हुये हैं,
ये दुनिया खूबसूरत अब नहीं है.
मैं अपनी ज़ात में गुम हो चुकी हूं,
कोई भी दिल में हसरत अब नहीं है.
ऐ ज़िम्मेदारियो अब जान बख़्शो,
कि मुझ में और हिम्मत अब नहीं है.
मैं तेरे ग़म में दो आंसू बहा लूं,
मुझे इतनी भी फुर्सत अब नही है.
जो लाज़िम ज़िंदगी के वास्ते थी,
मुझे वो भी सहूलत अब नहीं है.
मुझे शायद न तुम पहचान पाओ,
वो पहली जैसी सूरत अब नहीं है.
मेरे बच्चों को अब पर लग गये हैं ,
उन्हें मेरी ज़रूरत अब नहीं है.
पढ़े लिक्खे भी पागल हो गये हैं,
ये मत कहना जिहालत अब नहीं है.

स्टीव मैराबोली की अंग्रेजी कविता का नीता पोरवाल द्वारा हिंदी अनुवाद-

नीता पोरवाल

हिम्मत करो

जब नया दिन शुरू हो,
तो मुस्कुराने की हिम्मत करो.
जब अंधेरा छाये,
तो सबसे पहले
रोशनी करने की हिम्मत करो.
जब अन्याय हो,
तो सबसे पहले
इसकी निंदा करने की हिम्मत करो.
जब कुछ मुश्किल लगे,
तो इसे किसी तरह
हल करने की हिम्मत करो.
जब जीवन आपको हरा दे,
तो वापस लड़ने की हिम्मत करो.
जब कोई उम्मीद नजर न आये,
तो कुछ पाने की हिम्मत करो.
जब आप
थका हुआ महसूस कर रहे हों,
तो चलते रहने की हिम्मत करो.
जब समय कठिन हो,
तो और कठोर होने का साहस करो.
जब प्यार आपको पीड़ा दे,
तो फिर से
प्यार करने की हिम्मत करो.

जब कोई चोट पहुंचाये,
तो उनके मन का
मैल हटाने की हिम्मत करो.
जब कोई खो जाये,
तो उनके रास्ता खोजने में
मदद करने की हिम्मत करो.
जब कोई दोस्त गिर रहा हो,
तो सबसे पहले
हाथ बढ़ाने की हिम्मत करो.
जब आप दूसरे के साथ
रास्ता पार करते हों,
तो उनके होंठों पर
मुस्कुराहट लाने की हिम्मत करो.
जब आप बहुत अच्छा महसूस करते हैं,
तो किसी और को भी
अच्छा महसूस कराने की हिम्मत करो.
जब दिन डूब गया हो,
तो यह महसूस करने की
हिम्मत करो कि आपने अपना
सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया है.
आप सबसे बेहतर होने की
हिम्मत करो
हर समय, हिम्मत करो.

(स्टीव मैराबोली (18 April 1975) एक अमेरिकी इंटरनेट रेडियो कमेंटेटर, प्रेरक वक्ता और लेखक हैं.)

राजेंद्र किशोर पंडा की ओड़िया कविता का संबिद कुमार दाश द्वारा अनुवाद

संबिद कुमार

किसी की मृत्यु से

तुम्हारे मरने के बाद
नित्य नियमित तुमको आविष्कार करना
मेरे वश में आया.
जो सिर्फ था संभावना में
घटा सो घटा
जो भी था असंभव
मानो वो भी आप-बीती हुआ.
सभा में लहराती साड़ियों की आंधी की
हर साड़ी में मानो
काली कोमली क्वांरी की
थी अलग-अलग गूढ़-माया.
तुम्हारे मरने के बाद
फिर-फिर शुरू हो गये हठात्
मंदिर की सीढ़ियां,
मास्टर कैंटीन चौक से
फूलों की दुकान और कविता-किताब की दुकान
बुलडोज़र चला कर तोड़ दिया गया.
मेरी कल्पना, मेरे स्वप्न-प्रक्षेप ही केवल
अक्षुण्ण रही.
तुम्हें मैंने कभी शहद का छत्ता बनाया तो
कभी बना दी महानदी
खाया, पीया, फूला-फला
ऐसे, घोर राज्य में भी
मशान में किलकारियों का गुंजन हुआ.
तुमसे मुलाकात से लेकर मृत्युकालीन विदाई तक
प्रत्येक मुहूर्त
पुनर्घटित हुआ नये-नये स्पंदित लय से,
परिचय के पीछे और मृत्यु से आगे भी
अभिज्ञान व्यापता गया.
हम ठीक वैसे ही दिखे
जिस रूप में जिसने भी हमें सुमिरन किया.
तुम्हारे भीतर की शून्या को पूर्णा करने की वासना
मुझ में नहीं है, ना थी,
पर ना जाने क्यों
तुम्हारे मरने के बाद पहली बार प्रकृति में
कुछ अधूरा सा लगा.
मानो, कवि ने तीनों नेत्रों को
मूर्तिमती काली-छाया के आगम दृश्य को लेकर
भीतर के गृही के लिये बार-बार
खोला फिर बंद किया ,बंद किया फिर खोला.
तुम अपनी अनुपस्थिति
तुम अपनी गैर-हाजिरी के सिवाय
और क्या हो, मैं ठीक जानता नहीं,
इतना है पता — तुम्हारे मरने के बाद
नित्य नियमित तुमको आविष्कार करना
मेरे वश में आया.

पाब्लो नेरूदा की मशहूर नज्म का अनुवाद खुर्शीद अनवर द्वारा-

खुर्शीद अनवर

आज की रात तराशूंगा दर्द के नगमे
आसमां तारों की चादर में समाया सा है,
और तारों में दमक भी है थरथराहट भी
गीत के सुर भी हवाओं में घुले जाते हैं,
हां मुझे इश्क था उसको भी रहा हो शायद
ऐसी ही रात थी और ऐसा ही फैला आकाश
मेरी आगोश में सिमटी हुई बल खाई हुई
मेरे बोसों के समंदर में वह नहाई हुई
आसमां दूर तलक अपना निगहबान सा था
उसने भी इश्क किया मेरा भी कुछ कम तो ना था,
कैसे उन झील सी आंखों से ना उल्फत करता
आज की रात तराशूंगा दर्द के नगमे.
कैसे मैं मान लूं वह साथ नहीं है मेरे
कैसे एहसास करूं उस से जुदा हो जाना
शब् की फैली हुई ख़ामोशी की आवाजों की
गूंज कुछ और भी बढ़ती है कि अब वह जो नहीं
नगमे यूं रूह को सैराब किये जाते हैं
जैसे शबनम के नरम कतरे गिरें मैदां में
क्या हुआ जो मेरी उल्फत उसे रख पाई नहीं अपने पास
आज फिर तारों की बरसात है पर वह ही नहीं
दूर से, नगमे की आवाज़ लरज़ती है कहीं
यह कहानी है मेरी मैं भी क्या बेचैन नहीं
नज़रें बेचैन है बस एक नज़ारे के लिए
उसको एक बार यहीं पास बुलाने के के लिए
दिल तडपता है उसे दिल में बसाने के लिए
गो की मालूम है वह अब नहीं आने के लिए
है वही रात दरख्तों पे वही चांदनी है
पर ना हम वह हैं ना उन रातों की परछाईं है
तय तो है अब कोई चाहत कोई उल्फत ना रही
फिर भी उस हुस्न से हद दर्जा मोहब्बत तो रही,
मेरी आवाज़ के तारों में तमन्नाओं का सुर आज भी है
दोश पर नरम हवाओं पे करे यह परवाज़
मेरी आवाज़ बने आज फिर तेरी आवाज़
मेरे बोसे थे कभी उसकी पुर असरार आवाज़
किसी शहनाई की मानिंद वह गाती आवाज़
वह निगाहें जो कभी मेरा वजूद भरती थी
अब किसी और की जलवों में समा जायेंगी
उस से अब प्यार नहीं पर शायद
कोई चिंगारी अभी दिल में दबी हो शायद
इश्क लम्हों में गुज़रता है मगर याद का बोझ
भारी पत्थर है जो सीने से उतरता ही नहीं
इस जवां रात के जैसी ही थी वह भी रातें
मेरी आगोश थी और उसका लरज़ता सा जिस्म
वह मेरे साथ नहीं रूह को मंज़ूर नहीं
हां मगर आखरी यह दर्द है जो उसने दिए
उसकी उल्फत के जवान दर्द की खातिर मैंने
बस यही आख़री अशआर हैं जो मैंने लिखे.

ओ अपरचित

केदार नाथ सिंह

लाओगे? क्या लाओगे?
पूछते हैं घर दिशाएं
नदी- नाले गांव- जंगल.

लाओगे क्या लाओगे?
गंध पहले बौर की
या फलों पर चढ़ते सुनहरे रंग
स्पर्श हाथों का नया
या सर्द पानी सी छुअन निःसंग.

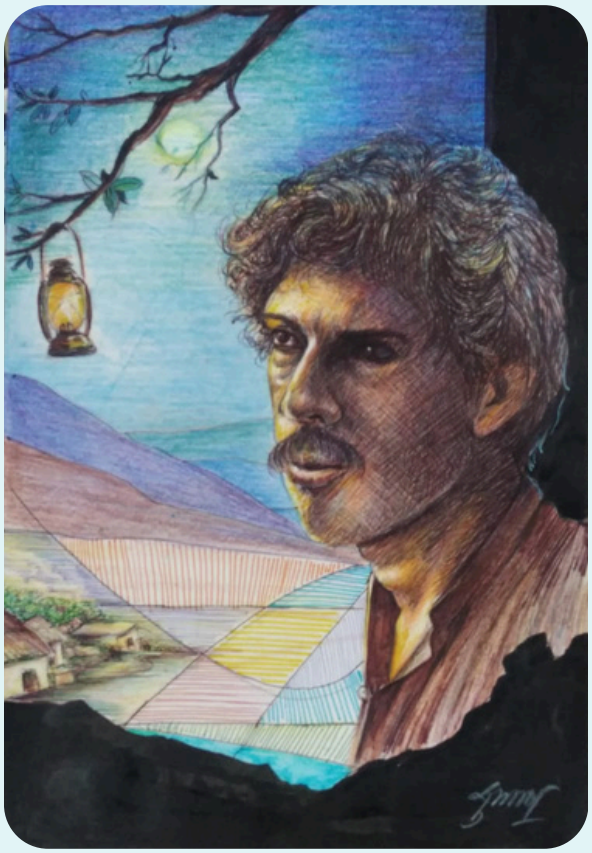

लाओगे? क्या लाओगे?
अनछुए तट
या कि रस्तों के नए भटकाव
धूपगंधि पंख चिड़ियों के
कि टूटे आंधियों
के पांव.

लाओगे? क्या लाओगे?
नई चा की प्यालियों में तैरता दिन
या कि हल्की भाप
चोट खाये बादलों की एक टूक जिजीविषा
या फिर
अजन्मे स्वरों का बढ़ता आलाप.
लाओगे? क्या लाओगे?

मत पूछो

बाबुषा कोहली

ऐसे सवाल मुझसे मत पूछो जिनके जवाब गूगल दे सकता है
माप, गणना और तुलना के सवाल मुझसे मत पूछो
मत पूछो कौन-सा लेखक बुरा है और कौन-सा अच्छा
मत पूछो कौन-सी कृति शास्त्रीय है
और कौन-सी लोकप्रिय
मत पूछो बच्चे का क्या नाम रखना चाहिए
मत पूछो रोज़ी-रोटी के लिए क्या काम करना चाहिए
समय की चाल मत पूछो
मौसम का हाल मत पूछो
व्हाट्सएप पर सवाल मत पूछो
मेसेंजर पर सवाल मत पूछो
फ़ोन पर सवाल मत पूछो
मेल पर सवाल मत पूछो
कहने या पूछने के लिये सचमुच की कोई बात हो
तो थोड़ा ठहरो कुछ दिन या महीनों तक
या कुछ बरसों तक
फिर एक दिन डाकघर से एक अन्तर्देशीय ले आओ
और वह बात उसमें लिखो
यदि वह सवाल है तो चिट्ठी लाल बक्से में डालने के पहले
जवाब तुम तक आ जाएगा
यदि वह कोई बात है तो तुम्हारे लिखते-लिखते ही
मुझ तक पहुंच जाएगी
आज़मा लो
जवाब कभी भी मनुष्यों से नहीं आते
वे आते हैं जीवन से
बातें भटक जातीं प्रायः भाषा में
अ-भाषा में पहुँच जातीं सही पते पर वे
धीरज धरो
जो धीरज धरना जानते हैं, यह अस्तित्त्व उन्हें अपने
हृदय की धमनियों में धारण करता है
लहू की तरह
जो धीरज धरना जानते हैं, उनके ही लहू का लोहा
लगा हुआ है उस नींव पर
जिसके बूते इस जगत की इमारत खड़ी हुई है
गहरी सांस लो
पानी पियो.

एक याद : डॉ. मोहन नागर

भावेश दिलशाद

"सिरहाने मीर के कोई न बोलो
अभी टुक रोते-रोते सो गया है"...

रोया नहीं, तो शायर क्या? फ़नकार क्या? अपने ही लिए रोया, अपने ही दुखों से रोया तो भी शायर क्या? धूप झेलते हैं, आग पीते हैं, झंझावातों से टकराते हैं और न जाने कितनों के ताने सुनकर पनपते जाते हैं, फिर भी दिल ऐसा कि धड़के तो दुख देने वाली कायनात के लिए ऑक्सीजन ही फूंके. जंगलों का किरदार सबके नसीब में नहीं होता. मोहन भाई के भीतर के जंगल से ही कोई तेज़ झोंका उड़ा था और मेरी झोली में एक नज़्म डाल गया था. यह तब की बात है जब दास्तां कहते-कहते मोहन भाई को रोना आने लगा था और रोते-रोते खोना भी.

दर्द हुआ था. होता है. होता रहेगा कि एक ज़िन्दा शख़्स महफ़िल से तक़रीबन रुसवा चला गया. एक बेलौस आवाज़ नये अल्फ़ाज़ की तमाम संभावनाओं से मुंह मोड़कर गूंज बन गयी. एक दिलदार दोस्त, हौसले का एक हाथ अचानक छूट गया, बेवफ़ा हो गया.

"बहुत सी बातें पूरी होनी थीं, बहुत से ख़्वाब पूरे होने थे,
अधूरे थे बहुत से काम और अचानक वक़्त पूरा हो गया."

ग़ज़ब का यारबाश आदमी था. रिश्तों की हरारत से उसके बदन में ख़ून दौड़ता था तो ज़िंदगी छलछलाकर उफनती थी. अपनी मुश्किलों से तपकर ढला इंसान था. हम एक-ही या एक-से ही तो नहीं थे, पर जौन के ढंग से कहूं तो, थे एक ही जंगल के. अब मैं अपने जंगल में अजनबियों के बीच काफ़ी तनहा उस इत्तेफ़ाक को भी सोचता हूं कि हम एक-दूसरे से अनजान भी न थे.

हमारी सोहबत का रास्ता साहित्य से जुड़ी बातों से बना. फ़ोन का एक फ़ायदा हुआ कि एक समूह 'साहित्य की बात' पर हम टकराये. एक ही जंगल का मिज़ाज था तो टकराहट भी हुई, फिर उसी जंगल का दिल था, तो मिला था. पिपरिया और पचमढ़ी की 'साहित्य की बात' की यात्रा के दौरान उन्हें नज़दीक से देखने को मिला, तो कुछ हमआहंगी भी बढ़ी. हमख़याली तो शायद कुछ कम, लेकिन हमऐब हम बहुत रहे. मोहन भाई को ख़ास नशों से लगाव था, मेज़बानी का शौक़ था, मुहब्बत और हक़ के लिए तड़प थी और पाखंड से बड़ी कोफ़्त थी, 'ख़ुदी की ख़ुदाई' से चिढ़ थी और साहित्य के नाम पर स्वयंभू प्रवृत्ति से सख़्त ऐतराज़ था. मौक़ा मिलते ही भाई भी तन्ज़, प्रतिरोध या खुला तार्किक विरोध दर्ज कराने से चूकते नहीं थे. मुझे लगता है, अब भी जहां होंगे, वहां हमारा जंगल ही आबाद कर रहे होंगे.

"किसी की सोच रोशन करनी है, किसी आवाज़ में दम भरना है,
अभी ज़िंदा बने रहना है दोस्त, बेशक वक़्त पूरा हो गया."

ज़िंदा वही है जो ढर्रे का विरोधी है, बाग़ी है. फ़कीरों को जीने का यही सलीक़ा आता है. मोहन भाई की कविताओं से लेकर लघुकथाओं तक ऐसे तेवर और फ़लसफ़े मिल जाते हैं. धर्म के नाम पर चल रही मक्कारियों को लताड़ना फ़ितरत में था. एक बार फ़ोन पर बात हुई तो एक प्रसंग में बोले, 'भावेश, चमड़ी और धर्म का धंधा कभी ख़त्म नहीं होता'. उनके पास अपनी एक समझ थी, मैं बहुत हद तक जिसका मुरीद भी रहा.

सामाजिक-साहित्यिक समूहों में छोटे-मोटे स्वयंभू टाइप के लोगों को तो वह एकाध बयान में ही उधेड़ दिया करते थे. उनकी पाखंड विरोधी चेतना के दो उद्धरण मुझे ज़ाती तौर पर याद आते हैं. एक, चंद्रकांत देवताले के साथ अपनी एक वार्ता और बहस को याद करते हुए वह बताते थे कि कैसे उन्होंने जटिल कविताई पर देवताले जी को घेरा था और तर्क के स्तर पर उन्हें निरुत्तर किया था. प्रसंग उनके शब्दों में इस तरह था:

'आपकी कविता पढ़ने पर समझ क्यों नहीं आती?'
'एक बार में शायद न आये, फिर पढ़िए.'
'दस बार पढ़ने पर भी समझ नहीं आती, तो?'
'ग्यारहवीं बार पढ़िए.'
'हा हा हा'

दूसरा प्रसंग मेरे लिए और भी महत्वपूर्ण था. कोरोना काल में सरकारी तंत्र में कई तरह की गड़बड़ियां चल रही थीं. मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में कुछ बड़े घपले सुर्खियों में थे. चंद रोज़ में मुझे पत्रकारिता से जुड़े कुछ सूत्रों से एक इशारा मिला, तो मैंने उन्हें फ़ोन करके कहा, 'आप तो छुपे रुस्तम हो दादा.'

अपने अंदाज़ में हंसे, बोले, 'हां, तूने सही सुना.' फिर मेरी पत्रकारिता के बारे में कुछ सवाल पूछकर कहा, 'अरे! पहले बताया नहीं तूने. रुक, अगला बड़ा ख़ुलासा तेरे ज़रिए ही होगा.' मुझे उनकी बात पर अब भी यक़ीन रहता है.
"जहां हम तुम मिलेंगे अब कभी, वहां आड़े न आने देंगे वक़्त,
ये दुनिया एक लमहे की ही थी, यहां तक वक़्त पूरा हो गया."

इस यक़ीन की एक वजह छोड़ गये हैं मोहन भाई. 7 नवंबर 2020 की बात है. एक कविता पूरी हुई, तो शायर के मन में होने वाली खलबली की वज्ह से मुझे एक ही नाम याद आया. फ़ौरन भाई को भेज दी. उनके लिखित शब्द आये, 'चंद्रकांत देवताले का एक संग्रह ऐसा था, जो केवल एक कविता थी. हिंदी साहित्य में ऐसी कोई दूसरी रचना ये हो सकती है भावेश, यदि तैयार हो पाई तो. तुम्हें नहीं पता कि क्या प्लॉट आया है तुम्हारी क़लम पर'. इस संदेश के बाद हमारी बातचीत हुई फ़ोन पर और क़रीब एक घंटे तक वो यही एक्सप्लेन करते रहे कि 'क्या प्लॉट आया मेरी क़लम पर'. उनकी बातें, सुझाव और हिदायतें इतनी पुरअसर थीं कि अब तक उस कविता पर मैं सिर्फ़ काम कर रहा हूं. कहीं किसी से साझा नहीं की है. मुझे यक़ीन है कि कभी एक बड़ा ख़ुलासा होगा. इसका उलट एक मामूली प्रसंग और था. उनकी लघुकथाओं में 'धर्म और चमड़ी का धंधा' केंद्रीय विषयों के रूप में मौजूद रहे थे. 'चमड़ी के धंधे' विषयक एक लघुकथा पर मैंने उनके साथ कोरोना काल की एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट और उस पर अपना एक 'मन' साझा किया था. तब उन्होंने कहा था, 'ये वाक़ई एक ग़ज़ब का प्लॉट है. इससे ज़रूर कुछ नया निकलेगा.' अस्ल में, कुछ आवाज़ें ऐसी होती हैं, जो तनहाई में आपसे बातें करती हैं, जो आपके आसपास गूंजती रहती हैं. जो अकेले में, टूटने वाले पलों में आपसे बतियाने चली आती हैं. उन आवाज़ों में से एक मोहन भाई की है और रहेगी मेरे साथ.

उनकी आवाज़ मेरे साथ उन दिनों में भी लगातार जुड़ी रही, जब मैं सर्जरी और उसके बाद के दर्द से दो-चार था. फिर कुछ-कुछ दिनों में फ़ोन पर हम बतियाते रहते थे. कविताओं को लेकर, साहित्यिक बातों को लेकर और रोज़मर्रा की कुछ बातों को लेकर भी. लघुकथा लेखन के दौर में उनके लिखे पर चर्चा होती थी. इसे लेकर वह बहुत गंभीर थे. कहते थे, 'पता नहीं भावेश.. ये लेखन बहुत गंभीर है और जब तक कुछ बहुत-बहुत सार्थक और अलहदा न आये मन में.. अगली कोई लघुकथा भी न हो पाएगी. आगे कुछ निकला तो तुम्हें ज़रूर भेजूंगा.' उनकी लघुकथाओं की धार एक आश्वस्ति बन रही थी साहित्य विश्व के लिए. मुझे पता नहीं कि उसका अंजाम क्या हुआ! क्या कोई प्रकाशन हो सका या नहीं?
"उस के सुनने के लिए जमा हुआ है महशर
रह गया था जो फ़साना मिरी रुस्वाई का"...

जब कोई मुझे 'भावेश' कहेगा, जब कोई टाइप संदेशों में डॉट्स लगाकर बात करेगा, जब कोई मेरी आलोचना करता हुआ भी चहेता लगेगा. मोहन भाई मुझे शायद ऐसे भी याद आते रहेंगे. बग़ैर परवाह किये कि किसकी है, ख़राब कविता को ख़राब कह देना, ख़राब आलोचना को भी नकार देना, नाजायज़ पक्ष की बखिया उधेड़ देना. इन तमाम ऐबों के लिए मोहन भाई की याद मुझे हमेशा आती रहेगी. मुझे याद है, उन्होंने बताया था कि उनका बचपन कैसे बीता था. सिर पर ईंटें ढोकर जो जवान हुआ हो, उसके मन में ग़लत को ग़लत कहने का डर होता भी क्यों? वो पाखंड से लोहा लेता भी क्यों नहीं? कुल मिलाकर बात वही कि जंगलों को अंधेरा, चीखें और आंधियां डराती नहीं.
यूं भी कहना चाहता हूं कि बंदा नहीं था वो, बंदगी न उसका मक़सद थी, न मन्सब. नहीं, यानी वो ख़ुदा भी नहीं था. उसे ऐसा कोई भरम न था. ऐसे भरम पालने वालों को आईना और औक़ात दिखाने में उसकी कबीरी उभरकर आती थी. उन्हें किसी से ज़ाती द्वेष या बैर नहीं था, केवल मुद्दों को लेकर या ग़लत लिखे-कहे (उनकी नज़र में) की मुख़ालिफ़त उनका कैरेक्टर था.

उन्होंने मेरी भी दो-चार रचनाओं को सिरे से ख़ारिज किया था. मैंने ग़ौर किया तो पाया कि उनका रवैया ठीक था. हम सोशल मीडिया दौर में सब्र खो चुके हैं और जो मन में आया, वह सब कुछ प्रकाशन या प्रचार योग्य समझने के षडयंत्र के शिकार. मोहन भाई ऐसे ख़तरों के लिए भी ज़रूरी रहे. उन्हें ग़ज़लों में मुझसे कुछ 'नये और सार्थक' प्रयोगों की अपेक्षा भी थी. अपने इस हम-ऐब के साथ रूहानी तौर पर हमेशा जुड़ा रहूंगा. कोशिश करता रहूंगा कि उनकी कुछ तमन्नाओं और उम्मीदों को किसी तरह निभा सकूं. वरना यहां से आज़ाद होकर जब उनके पास पहुंचूंगा, तो उनकी सोहबत मिलेगी. अपने जंगल की तनहाई से छुटकारा पाकर हम एक महफ़िल और आबाद करेंगे. हम क्या? मैं ही अपने जंगल से अनजान हूं. उनके तो शायद और भी हमऐब रहे हों. वो तो महफ़िल कर ही रहे होंगे, यारबाश आदमी जो थे.
"सुकूं में अब रहो दिलशाद तुम, ये अच्छा है हुए आज़ाद तुम
चलो क़ैद-ए-हयात-ओ-मौत का भयानक वक़्त पूरा हो गया."

डॉ० कमलेन्द्र कुमार

(1)
मुझे किसी बांध की चाह नहीं, छाए पेड़ों की बहार.
'चिपको आंदोलन' के जनक बने, ये उनके थे उदगार.
(2)
शांत घाटी का कर संरक्षण, पाया पद्मश्री पुरस्कार.
वृक्ष मित्र भी कहलाईं वो, बोलो जी तुम सोच विचार.
(3)
नर्मदा आंदोलन के बने प्रणेता, पाया पद्मश्री सम्मान.
अजब अनूठा नाम है प्यारा, बोलो बच्चो, करके ध्यान.
(4)
नर्मदा आंदोलन की बनी प्रणेता, दुनियां में नाम कमाया.
राइट लाइवलीहुड अवार्ड लिया, बोलो नाम याद आया.
(5)
हरित विकास की बनीं समर्थक, था पाया पद्म श्री सम्मान.
सोचो समझो फिर बतलाओ, राधा, माही, और अरमान.
(6)
इकोलॉजी के बने प्रणेता, लिख डाला पर्यावरण विज्ञान.
सदा प्रकृति की बात करें, पाया संजय गांधी सम्मान.
(7)
बर्ड मैन सब कहते उनको, सुनो गौर से बात.
सदा विहग पर गौर करें वे, चाहे दिन हो रात.
(8)
गोपेश्वर में जन्म लिया, वे घूमे दुनिया सारी.
किया प्रकृति से प्यार इन्होने, हम उनके आभारी.
(9)
'पेड़ों की अम्मा' सब कहते, पाया पदम् श्री सम्मान.
बच्चो! इनको जानो समझो, रहो न तुम अनजान.
(10)
'जल पुरुष' सब कहते इनको, पाए कई सम्मान.
सदा प्रकृति की बातें करते, हैं भारत की शान.
(11)
सदा विटप की रक्षा की है, बनकर पहरेदार.
'चिपको मुहिम' की बनीं प्रणेता, जाने ये संसार.
(12)
'ट्री मैन' सब कहते इनको, किया प्रकृति से प्यार.
सदा पेड़ की रक्षा करते, बनकर पहरेदार.
(13)
दो वर्ष तक रहीं पेड़ पर, पेड़ बचाया लूना.
सदा पेड़ की रक्षा कर लो, प्यार करो तुम दूना.

(उत्तर: 1. सुन्दर लाल बहुगुणा, 2. सुगाथा कुमारी, 3. बाबा आम्टे, 4. मेधा पाटकर ,5. सुनीता नारायण, 6. रामदेव मिश्रा, 7. सलीम मुईनुद्दीन अब्दुल अली(सलीम अली), 8. चंडी प्रसाद भट्ट, 9. सालूमरदा थिमक्का, 10. डॉ. राजेन्द्र सिंह, 11. गौरा देवी, 12. मारीमुथु योगनाथन 13. जूलिया बटर फ्लाई)

रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के संवाद

स्वामी विवेकानंद: आज जीवन इतना जटिल क्यों हो गया है?
रामकृष्ण परमहंस: जीवन का विश्लेषण करना बंद कर दो. यह इसे जटिल बना देता है. जीवन को सिर्फ जिओ.
स्वामी विवेकानंद: हम हमेशा दुखी क्यों रहते हैं?
रामकृष्ण परमहंस: परेशान होना तुम्हारी आदत बन गयी है. इसी वजह से तुम खुश नहीं रह पाते.
स्वामी विवेकानंद: अच्छे लोग हमेशा दुःख क्यों पाते हैं?
रामकृष्ण परमहंस: हीरा रगड़े जाने पर ही चमकता है. सोने को शुद्ध होने के लिए आग में तपना पड़ता है. अच्छे लोग दुःख नहीं पाते बल्कि परीक्षाओं से गुजरते हैं. इस अनुभव से उनका जीवन बेहतर होता है, बेकार नहीं होता.
स्वामी विवेकानंद: आपका मतलब है कि ऐसा अनुभव उपयोगी होता है?
रामकृष्ण परमहंस: हां. हर लिहाज से अनुभव एक कठोर शिक्षक की तरह है. पहले वह परीक्षा लेता है और फिर सीख देता है.
स्वामी विवेकानंद: समस्याओं से घिरे रहने के कारण, हम जान ही नहीं पाते कि किधर जा रहे हैं.
रामकृष्ण परमहंस: अगर तुम अपने बाहर झांकोगे तो जान नहीं पाओगे कि कहां जा रहे हो. अपने भीतर झांको. आखें दृष्टि देती हैं. हृदय राह दिखाता है.
स्वामी विवेकानंद: क्या असफलता सही राह पर चलने से ज्यादा कष्टकारी है?
रामकृष्ण परमहंस: सफलता वह पैमाना है जो दूसरे लोग तय करते हैं. संतुष्टि का पैमाना तुम खुद तय करते हो.
स्वामी विवेकानंद: कठिन समय में कोई अपना उत्साह कैसे बनाए रख सकता है?
रामकृष्ण परमहंस: हमेशा इस बात पर ध्यान दो कि तुम अब तक कितना चल पाए, बजाय इसके कि अभी और कितना चलना बाकी है. जो कुछ पाया है, हमेशा उसे गिनो, जो हासिल न हो सका उसे नहीं.
स्वामी विवेकानंद: लोगों की कौन सी बात आपको हैरान करती है?
रामकृष्ण परमहंस: जब भी वे कष्ट में होते हैं तो पूछते हैं, "मैं ही क्यों?" जब वे खुशियों में डूबे रहते हैं तो कभी नहीं सोचते, "मैं ही क्यों?"
स्वामी विवेकानंद: मैं अपने जीवन से सर्वोत्तम कैसे हासिल कर सकता हूं?
रामकृष्ण परमहंस: बिना किसी अफ़सोस के अपने अतीत का सामना करो. पूरे आत्मविश्वास के साथ अपने वर्तमान को संभालो. निडर होकर अपने भविष्य की तैयारी करो.

दिल्ली में 'भारत' को जीने वाला बौद्धिक योद्धा

समीक्षक: प्रोफेसर संजय द्विवेदी

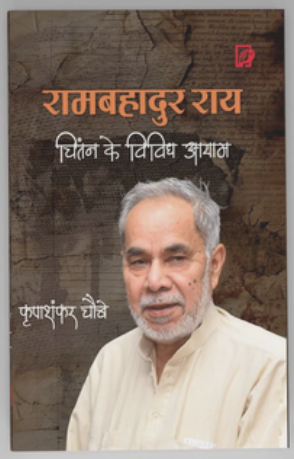

पुस्तक:रामबहादुर राय :चिंतनके विविध आयाम, लेखक: प्रोफ. कृपाशंकर चौबे, पृष्ठ: 206, मूल्य: रु. 540 .00 (हार्ड बाउंड), प्रकाशक: प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग, इंडिया, गाजियाबाद

कभी जनांदोलनों से जुड़े रहे, पदम भूषण और पद्मश्री सम्मानों से अलंकृत रामबहादुर राय का समूचा जीवन रचना, सृजन और संघर्ष की यात्रा है. उनकी लंबी जीवन यात्रा में सबसे ज्यादा समय उन्होंने पत्रकार के रूप में गुजारा है. इसलिए वे संगठनकर्ता, आंदोलनकारी, संपूर्ण क्रांति के नायक के साथ-साथ महान पत्रकार हैं और लेखक भी. अपने समय के नायकों से निरंतर संवाद और साहचर्य ने उनके लेखन को समृद्ध किया है. हमारे समय में उनकी उपस्थिति ऐसे नायक की उपस्थिति है, जिसके सान्निध्य का सुख हमारे जीवन को शक्ति और लेखन को खुराक देता है. उनका समावेशी स्वभाव, मानवीय संवेदना से रसपगा व्यक्तित्व भीड़ में उन्हें अलग पहचान देता है. 'दिल्ली' में 'भारत' को जीने वाले बौद्धिक योद्धा के रूप में पूरा देश उन्हें देखता, सुनता और प्रेरणा लेता है. जिस दौर की पत्रकारिता की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता पर ढेरों सवाल हों, ऐसे समय में राम बहादुर राय की उपस्थिति हमें आश्वस्त करती है कि सारा कुछ खत्म नहीं हुआ है.

भारतीय जीवन मूल्यों और पत्रकारिता के उच्च आदर्शों को जीवन में उतारने वाले रामबहादुर राय ने राजनीति के शिखर पुरुषों से रिश्तों के बावजूद कभी कलम को ठिठकने नहीं दिया. उन्होंने वही लिखा और कहा जो उन्हें सच लगा. राय साहब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर छात्र राजनीति में सक्रिय रहते हुए, ऐतिहासिक जयप्रकाश आंदोलन के नायकों में रहे. दैनिक 'आज' में बांग्लादेश मुक्ति संग्राम का आंखों देखा वर्णन लिखकर आपने अपनी पत्रकारीय पारी की एक सार्थक शुरुआत की. युगवार्ता फीचर सेवा, हिन्दुस्तान समाचार संवाद समिति में कार्य करने के बाद आप 'जनसत्ता' से जुड़ गए.

'जनसत्ता' में एक संवाददाता के रूप में कार्य प्रारंभ कर वे उसी संस्थान में मुख्य संवाददाता, समाचार ब्यूरो प्रमुख, संपादक, जनसत्ता समाचार सेवा के पदों पर रहे. आप नवभारत टाइम्स, दिल्ली में विशेष संवाददाता भी रहे. आप देश की अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हैं जिनमें प्रज्ञा संस्थान, युगवार्ता ट्रस्ट, दशमेश एजुकेशनल चेरिटेबल ट्रस्ट, इंडियन नेशनल कमीशन फॉर यूनेस्को, प्रभाष परंपरा न्यास, भानुप्रताप शुक्ल न्यास के नाम प्रमुख हैं.

आपकी चर्चित किताबों में आजादी के बाद का भारत झांकता है. ये किताबें राजनीति शास्त्र और समाजशास्त्र की मूल्यवान किताबें हैं. जिनमें भारतीय संविधान: एक अनकही कहानी, रहबरी के सवाल (पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर की जीवनी), मंजिल से ज्यादा सफर (पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह की जीवनी), काली खबरों की कहानी (पेड न्यूज पर केंद्रित), भानुप्रताप शुक्ल- व्यक्तित्व और विचार प्रमुख हैं. भारतीय पत्रकारिता की उजली परंपरा के नायक के रूप में रामबहादुर राय आज भी निराश नहीं हैं, बदलाव और परिवर्तन की चेतना उनमें आज भी जिंदा है. स्वास्थ्यगत समस्याओं के बावजूद आयु के इस मोड़ पर भी वे उतने ही तरोताजा हैं.

पत्रकारिता के इस अनूठे नायक पर प्रो. कृपाशंकर चौबे की नई किताब 'रामबहादुर राय:चिंतन के विविध आयाम'(प्रवासी प्रेम पब्लिशिंग, गाजियाबाद द्वारा प्रकाशित) उनके अवदान को अच्छी तरह से रेखांकित करती है. एक पत्रकार, संपादक, सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में बहुज्ञात राय साहब को इस तरह देखना निश्चित ही कृपाजी की उपलब्धि है. उनकी यह किताब राय साहब के संपूर्ण रचनाधर्मी स्वभाव का जिस तरह मूल्यांकन करती है, वह अप्रतिम है. किताब में उनका व्यक्तित्व, उनकी किताबें, उनके रिश्ते और रचना कर्म दिखता है. इस तरह यह किताब उन्हें जानने का सबसे बेहतरीन जरिया है. क्योंकि रामबहादुर राय जैसे बहुआयामी व्यक्तित्व को आप उनकी किसी एक किताब, एक मुलाकात, एक व्याख्यान से नहीं समझ सकते. किंतु यह किताब बड़ी सरलता से उनके बारे में सब कुछ कह देती है.

किताब में अंत में छपा उनका साक्षात्कार तो अद्भुत है, एक यात्रा की तरह और फीचर का सुख देता हुआ. संवाद ऐसा कि चित्र और दृश्य साकार हो जाएं. रामबहादुर राय से यह सब कुछ कहलवा लेना लेखक के बूते ही बात है. यह किताब एक बड़ी कहानी की तरह धीरे-धीरे खुलती है और मन में उतरती चली जाती है. किताब एक बैठक में उपन्यास का आस्वाद देती है, तो पाठ-दर पाठ पढ़ने पर कहानी का सुख देती है. यह एक पत्रकार की ही शैली हो सकती है कि इतने गूढ़ विषय पर इतनी सरलता से, सहजता से संचार कर सके. संचार की सहजता ही इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता है.

किताब की सबसे बड़ी विशेषता इसकी समग्रता है. वह बताती है कि किसी खास व्यक्ति का मूल्यांकन किस तरह किया जाना चाहिए. हिंदी पत्रकारिता में आलोचना की परंपरा बहुत समृद्ध नहीं है. इसका कारण यह है कि साहित्यिक आलोचना में सक्रिय लोग पत्रकारिता को बहुत गंभीरता से नहीं लेते, मीडिया अध्ययन संस्थानों में भी पत्रकारों के काम पर शोध का अभ्यास नहीं है. ऐसे में यह किताब हमें पत्रकारीय व्यक्तित्व की आलोचना का पाठ भी सिखाती है. 11 अध्यायों में फैली इस किताब का हर अध्याय समग्रता लिए हुए है.

हमारे बीते दिनों की यात्राएं, आजादी के बाद एक बनते हुए देश की चिंताएं, सरकारों की आवाजाही, हमारे नायकों की मनोदशा सब कुछ. पहले अध्याय में संघर्ष और सरोकार के तहत उनके बचपन,स्कूली शिक्षा,कालेज जीवन, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद में उनकी सक्रियता, संघर्ष, जेल यात्रा सब कुछ जीवंत हो उठा है. उनके आंदोलनकारी और छात्र राजनीति के पक्ष को यहां समझा जा सकता है. जयप्रकाश नारायण से उनका रिश्ता कैसे उन्हें रूपांतरित करता है, कैसे वे आंदोलन के मार्ग से लोक जागरण के लिए पत्रकारिता के मार्ग पर आते हैं, इसे पढ़ना सुख देता है. अध्याय दो में 'प्रश्नोत्तर शैली में पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर की जीवनी' शीर्षक अध्याय में राय साहब की किताब 'रहबरी के सवाल' की चर्चा है. चंद्रशेखर जी के साथ संवाद से बनी यह किताब राजनीति, समाज और समय के संदर्भों की अनोखी व्याख्या है. जहां संवाद एक तरह के शिक्षण में बदल जाता है. अध्याय तीन में पूर्व प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की जीवनी (मंजिल से ज्यादा सफर) भी संवाद शैली में ही लिखी गयी है. इस स्तर के राजनेताओं के अनुभव निश्चय ही हमें समृद्ध करते हैं. क्योंकि वे आजादी के बाद के भारत की राजनीति, संसद और समाज की गहरी समझ लेकर आते हैं. पत्रकार राय साहब इस तरह समाजविज्ञानियों और राजनीतिशास्त्रियों के लिए मौलिक पाठ रचते नजर आते हैं.

इस किताब की भूमिका में यशस्वी संपादक प्रभाष जोशी लिखते हैं -"रामबहादुर राय देश के एक बहुत विश्वसनीय और प्रामाणिक पत्रकार हैं. यह जल्दी में काता-कूता कपास नहीं है. बड़े जतन से बुनी गयी चादर है."

अध्याय चार और पांच महान समाजवादी चिंतक और राजनेता जेबी कृपलानी और जयप्रकाश नारायण को समझने में मदद करते हैं. अध्याय –छह में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक रहे बालासाहब देवरस की विचार दृष्टि पर चर्चा है. यह पाठ 'हमारे बालासाहब देवरस' नामक पुस्तक पर केंद्रित है जिसका संपादन राय साहब और राजीव गुप्ता ने किया था. अध्याय सात में गोविंदाचार्य पर संपादित किताब की चर्चा है. गोविंदाचार्य के बहाने यह किताब राजनीति की लोकसंस्कृति पर विमर्श खड़ा करती है. अध्याय आठ में पड़ताल शीर्षक से छपे उनके स्तंभ का विश्लेषण है. इस स्तंभ पर केंद्रित चार पुस्तकें अरुण भारद्वाज के संपादन में प्रकाशित हुई हैं. जिनका प्रो. कृपाशंकर चौबे ने नीर-क्षीर विवेचन किया है. अध्याय- नौ में राय साहब की बहुचर्चित किताब 'भारतीय संविधान- एक अनकही कहानी' की चर्चा है. इस किताब में संविधान सभा की बहसें हमारे सामने चलचित्र की तरह चलती हैं. बहुत मर्यादित और गरिमामय टिप्पणियों के साथ.

अपनी आधी सदी की पत्रकारिता में रामबहादुर राय ने जिन आदर्शों और लोकधर्म का पालन किया है, यह किताब उनके जीवन मूल्यों को लोक तक लाने में सफल रही है. इस बहाने उनके जीवन, कृतित्व और सरोकारों से परिचित होने का मौका यह पुस्तक दे रही है.

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल में जनसंचार विभाग के अध्यक्ष हैं.)

हिंदी त्रैमासिक
पहचान
देश से हम, हमसे देश

रचना आमंत्रण

अंतर्राष्ट्रीय, हिंदी त्रैमासिक ऑन लाइन पत्रिका ''पहचान'' हेतु आप भी रचनाएं भेज सकते हैं.

आलेख, समीक्षा, साक्षात्कार, शोध परक लेख, व्यंग्य, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत, लोक साहित्य, बाल साहित्य, कविता, गीत, कहानी, लघु कथा आस्था, धरोहर, इतिहास, कला, विज्ञान, स्वास्थ्य आदि साहित्य की सभी विधाओं में रचनाओं का स्वागत है.

रचनाएं वर्ड फाइल में अपनी तस्वीर और परिचय सहित भेजें. लेख के लिए 800 से 1,000 और कहानी के लिए अधिकतम शब्द सीमा 1600 शब्द है.

यदि आप अपना खींचा कोई चित्र पत्रिका के कवर पेज या फिर तिमाही चित्र चयन के लिए विचारार्थ भेजना चाहें तो अपने परिचय के साथ चित्र के बारे में बताते हुए ई – मेल कर सकते हैं.

संपादक मंडल का निर्णय अंतिम निर्णय होगा, इसमें विवाद की गुंजाईश नहीं होगी.

editor@pehachaan.com